

पुष्प न० १६

इक्षुकाराध्ययन

सचित्र

अनुवादक

प्रसिद्ध वक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी
महाराज के शिष्य साहित्य प्रेमी पण्डित
मुनि श्री प्यारचन्दजी महाराज

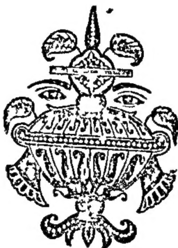
प्रकाशक

श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति
रतलाम

प्रथमावृत्ति २००० } मूल्य चार आने { वीराब्द २४५३ विक्रम १६८३

श्री जैन प्रभाकर प्रिंटिंग प्रेस रतलाम, सी आई

प्रकाशक-
मास्टर मिश्रीमल
श्रीजैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति
रतलाम



मुद्रकः-
मैनेजर लक्ष्मीचन्द्र सनीतवाला
जैन प्रभाकर प्रिंटिंग प्रेस
रतलाम (मालवा)

निवेदन।



प्रिय महोदय ! आज वह विषय आपके सामने रख रहा हूँ। जिसका जैनमात्र को अध्ययन एवम् बोध करना आवश्यकीय है। यह विषय श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्र का १४ वाँ अध्याय है। जिस का मूल अर्ध मागधी भाषा में श्रीभगवान महावीर स्वामीने फरमाया। उस में यह प्रकाश डाला गया है कि, इक्षुकार राजा और कमलावती रानी एवम् भृगु पुरोहित और उसकी पतिव्रता पत्नी और दोनों युग्म कुँमारों ने किस प्रकार मुक्ति प्राप्त की। उन्हीं मूल श्लोकों पर शास्त्रविशारद् श्रीमज्जै नाचार्य पूज्यवर श्री १००८ श्री मन्नालालजी महाराज की संप्रदाय के जगत् वल्लभ प्रसिद्धवक्ता-पण्डित मुनि श्री १००८ श्रीचौथमलजी महाराज के शिष्य साहित्य प्रेमी पण्डित मुनि श्रीप्यारचन्दजी महाराज ने संस्कृत छाया, अन्व-यार्थ और सरल भावार्थ किया है। अतः इस अध्ययन को पाठक पाठिकाओं के लाभार्थ इस संस्था की ओर से प्रका-शित कर मात्र लागत मूल्य में दिया जाता हैं।

इस में कहीं प्रुफ संशोधक की असावधानी से अशुद्धि रह

गई हो तो पाठक सुधार कर पढे और उस अशुद्धि से हमे परिचित करें, जिससे द्वितीयावृत्ति में उसका विशेष ध्यान रखा जाय।

श्रीजैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति
रतलाम
ता० १-२ २७

भवदीय
मास्टर मिश्रीमल
रतलाम



ॐ

वीतरागाय नमः।

संक्षिप्त विवर्ण—

इस प्रसिद्ध भारतभूमि में सन् ईसा के अनेक वर्ष पूर्व "इक्षुकार" नाम की एक प्रसिद्ध नगरी थी। उसके चारों ओर खाई युक्त कोट था। कोटकी रक्षा के लिये छोटे २ किले बने हुए थे। खाई बड़ी गहरी और चौड़ी थी जो कि स्वच्छ जल से सदैव पूर्ण भरी रहती थी। नगरी में प्रवेश करने के लिये चार दरवाजे थे उन दरवाजों पर रक्षक लोग सदैव रक्षार्थ नियत रहते थे। नगरी के मध्य चौक में राजा के बड़े २ विशाल महल बने हुए थे। उन महलों से कुछ आगे आस पास धनिक लोगों के रंग रंगीले सुन्दर गृह और दुकानें श्रेणी बद्ध बनी हुई थीं, जिनकी अद्भुत सुन्दरता देख दर्शक का मन सहसा उनकी ओर आकर्षित हो जाता था। दुकानों के बाहर चौड़ी २ सड़कें बनी हुई थीं। सड़कों के दोनों ओर हरे भरे पेड़ लगे थे जिन की सघन छाया में मनुष्य बड़े आराम से आते जाते थे। नगर के व्यापारी लोग अनेक प्रकार की चीजें रत्न आदि देश विदेशों से मंगाकर विक्रय करते थे। अनेक चीजें अपने देश के शिल्पियों से बनवा कर बाहर अन्य देशों को भेजते थे। व्यापारी लोग व्यापार में सत्यता का पालन करते थे जिस से उनका व्यापार बढ़ा चढ़ा था। राज्यकी ओर से कोई भी ऐसा कर (महसूल) नहीं लगा था जो प्रजाको असह्य हो। सारी प्रजा राम राज्यकी तरह सुख चैन से निवास

करती थी। राज्यकी ओर से शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिये उचित प्रबन्ध किया गया था। किसी जन को किसी भी प्रकार का भय न था। कोई किसी को किसी प्रकार से त्रसित न कर सक्ता था। अनेक धर्मस्थान बने हुए थे जिन में लोग अपनी २ इच्छानुकूल उन धर्मस्थानों में जा जा कर नियमित समय पर धर्मानुसार आराधना करते थे। इस प्रकार तमाम मनुष्यों का समय बड़े आनन्द के साथ व्यतीत होता था।

नगर के बाहर अनेक बाग बगीचे लगाये गये थे जिन में अनेकों प्रकार के वृक्ष अपनी हरी भरी छटा दिखा रहे थे। चारों ओर फूलों की महक वायु में सञ्चारित हो रही थी। सन्ध्या समय नगर निवासी जन अपने काम काज से निवट कर उन वाटिकाओं में आ आकर सारे दिन की थकावट को दूर कर अपने मस्तिष्क को विश्राम देते थे। मध्याह्न समय में जब ग्रीष्म ऋतु अपना प्रचण्ड रूप धारण करती थी और सूर्य देव के द्वारा सारी भूमि अग्निकी तरह तप्त हो जातीथी तब उस समय में पथिक लोग ग्रीष्म के प्रचण्ड शासन से बचने के लिये उन वाटिकाओं में वृक्षों की सघन ठण्ड छाया का आश्रय लेते थे और वे वृक्षभी परोपकारी सन्त की तरह स्वयं इतनी धूप और वर्षा सहन करते हुए आये हुए पथिक लोगों को आश्रय देते थे। पशुभी ग्रीष्म की कड़ाई से व्याकुल हो कर छाया में बैठने के लिये इधर उधर घूम फिर कर वृक्षों का आसरा ले रहे थे। पक्षी गणभी उड़ना छोड़ पानी से प्यासे होकर कठिन धूपसे घबड़ा कर वृक्षों की डालयों में मुँह छिपाये बैठे थे।

ग्रीष्म ऋतु के ऐसे ही प्रचण्ड मध्याह्न समय में उसी "इक्षुकार" नगरके बाहर नन्द वृक्ष राह में दो साधु जो कि

मुँह पर मुँहपत्ति हाथमें पात्र, कुक्षि में रजोहरण, नंगे नंगे पैर, नियमित श्वेत कपड़े धारण किये हुए वे जा रहे थे। रास्ते में उन साधु जनों को अत्यन्त प्यास लगी। पर उन के पास पीने को पानी नहीं था और न वे कुआ, तालाब, नदी आदिका पानी पी सके; इस से उनका कण्ठ शुष्क होता जा रहा था, अधिक प्यास के सताने से वे बोल न सके थे और न चल सके थे। कुछ आगे चलते चलते मूर्च्छित हो एक पेड़के नीचे गिर पड़े। कुछ समय के बीतने पर चार गोपालक (ग्वालिये) गौ भैंसों को चराते हुए वहां आ निकले। उन्हों ने उन साधुओं को मूर्च्छित अवस्था में पड़े हुए देख कर विचार किया कि ये श्वास तो कुछ२ ले रहे हैं पर मृत्यु के तुल्य क्यों पड़े हुए हैं? निदान इनको किसी एक दुख से पीड़ित हो मूर्च्छा आगई है इस लिये इनको सावधान करने के लिये अपने पास में तक्र मिश्रित जल भरा हुआ है उसे इनके मुँह पर छिड़कें"। निदान उन्हों ने ऐसा ही किया और वे दोनों साधु कुछ सावचेत हुए। तब उन्हों ने ग्वालियों को ऐसा करने से मना किया कि, 'बस, मत करो। हमारा कष्ट नहीं, हमको प्यास बहुत जोर से लग रही है यदि तुम्हारे पास तक्र वगैर कुछ हो तो हमें थोड़ा दे दो जिसे हम पी कर चित्त को शान्त करें" यह सुन कर उन ग्वालियोंने कहा कि- हाँ हमारे पास तक्र मिश्रित जल भरा हुआ है आप कृपा कर ग्रहण कीजिये'। उन चारों ही ग्वालियों ने उच्च भाव से उन्हें जल का दान दिया पर उनमें से दो ग्वालियों के दिल में फिर से कुछ कपटता आ गई जिससे उन दो ग्वालियों के स्त्री वेद का बन्धन पड़ गया जिससे एक तो कमलावती रानी और दूसरा यशा दासी हुई, पर चारों ही ने दान देते समय पडत संसार

आश्रय कर लिया। तदनन्तर उन दोनों साधुओं ने उन चारों ही गोपालकों को सब से श्रेष्ठ अहिंसा परमधर्म और दान के महात्म्य का दिग्दर्शन कराया।

मुनि लोग वहां से विहार कर आगे दूसरे नगर को गये और यों धर्मोपदेश देते हुए अपना कालक्षेप करते रहे। इधर वे चारों ही गोपालक दया और दान पर विशेष लक्ष देते हुए समय व्यतीत कर रहे थे। ये छओं व्यक्ति अपना २ आयुष्य पुण्यानुसार क्षय करते करते जो कि आगे कहेंगे, इस के अनन्तर भव में एक ही स्वर्ग के ही "नलिनी गुल्म" नाम के विमान में जन्म ले देवता हुए। वहां उन छओं में से एक देव अपना आयुष्य पूर्ण कर इषुकार नामकी नगरी में इषुकार नाम का राजा हुआ। दूसरा देव वहां से मर कर इसी राजा के कमलावती नाम की रानी बनी। तीसरा देव इसी नगरी में 'भृगु' नाम का राज्य पुरोहित हुआ। और चौथा देव इसी पुरोहित की पत्नी 'यशा' हुई। शेष दो देव उस स्वर्ग के विमान में सुख मय समय बिता रहे थे।

भृगु पुरोहित धन सम्पत्ति से परिपूर्ण और सब ही तरह के सुखों से अपना जीवन व्यतीत करते थे। स्त्री आज्ञाकारिणी और सुन्दरता में मनोहारिणी थी। नौकर चाकर आदि की कोई कमी न थी। सब सुखों से भरपूर होने पर भी सन्तान सुख का अभाव था। बस इसी दुःख की चिन्ता राक्षसी रात दिन सताये रहती थी। पुत्र कामना चित्त को व्याकुल किये डालती थी। खाने पीने, सोने जागते, उठते, बैठते यही चिन्ता चित्त पर चढ़ी रहती थी। इससे अधिक दुःख भृगु पुरोहित की पत्नी को सन्तान न होने का था। सच है दुःख होना ही चाहिये क्योंकि

जिस घर में सन्तान नहीं वह घर सूना सा दिखाई पड़ता है। गृहस्थी को चाहे जितना कष्ट हो पर सन्तान हो तो उस कष्ट नहीं सताता। वह दुखों को सन्तान के सामने तुच्छ समझता है। बेचारी भृगु पत्नी इस बात से और भी अधिक दुखी थी कि उसे सब वन्ध्या कह कर पुकारते थे और प्रात काल में उस का मुँह तक नहीं देखते। इसी चिन्ता में उन दोनों प्राणियों के रात दिन बीतने लगे।

इधर उन दोनों देवों का आयुष्य पूर्ण होने को था उन्हों ने परस्पर विचार किया कि अपने लोग यहां देव हुए इस का मुख्य कारण यह है कि पिछले भव में मोक्ष के लिये संयम धारण किया था, अत एव अपने लोगों को भविष्य भव में भी संयम लेना उचित है पर यह तो विचार करो कि यहां से मर कर कहां जन्म लेंगे। उन्हों ने अवधि ज्ञान के द्वारा जाना कि इक्षुकार नाम की नगरी में भृगु नाम के राज्य पुरोहित के घर जन्म लेंगे। पुत्र की लालसा में आकर माता पिता सद्धर्म के कट्टर विरोधी बन अपने को धर्म से विमुख करेंगे। इस से तो यह अच्छा होगा कि पहिले वहां जाकर उन्हें स्पष्ट कह दें कि तुम्हारे पुत्र तो होंगे पर वे संयम लेंगे, अत उन्हें रोकना मत। ऐसा उनसे वचन ले आवें। ऐसा विचार कर दोनों देव मृत्यु लोक में उतरे और साधु वेष धारण कर भृगु पुरोहित के यहां आहार पानी लेने के बहाने से आये। इन आते हुए साधुओं को देख पुरोहित मन में बड़ा प्रसन्न हुआ और अपने को धन्य समझने लगा कि आज ऐसे महापुरुषों का मेरे घर पर आगमन हुआ। पुरोहित ने साधुओं के चरण स्पर्श किये और बोला- "स्वामी पधारिये, आप ने बड़ी कृपा करी, मेरा घर पवित्र किया, आज आप इस सेवक के हाथ से भोजन ग्रहण करें"। ऐसा कह कर उन दोनों साधुओं को भोजनालय में

हमारे ऐसे भाग्य कहां है जो कि मेरे कुल में मैं प्रभु भक्त हो! स्वामिन्! हम उन्हें कभी भी न रोकेंगे बल्कि हो व गर्भ में से निकलते ही साधु हो जावें यह उन की इच्छा। यह बात आप की प्रतिज्ञा के साथ कहते हैं कि हम उन्हें कदापि नहीं रोकेंगे। हम तो केवल बालक के पालक का दूर होना ही प्रमाण समझते हैं। इस प्रकार कथोपकथन के बाद दोनों देव जंगल में आ करके मैं जा विराजे।

कुछ समय के पश्चात वे दोनों ही देव अपनी आयुष्य पूर्ण कर उस भृगु पुरोहित की पत्नी 'यशा' के गर्भ में आये। जब मासिक आवर्तन के समय रजोदर्शन न हुआ तब उस को निश्चय हो गया कि मैं गर्भवती हूं। ऐसा निश्चय होने पर अपने आराध्य पतिदेव को कहने लगी कि जो वे साधु कह गए थे वही मुझे निश्चय हो चुका इसमें आजही से सभी बातों पर पूरा ध्यान रखना अपना ध्येय समझूंगी जिनका जानना और पालन करना प्रत्येक स्त्री का कर्तव्य है"। पुरोहित अपनी पत्नी के आशा पूरित वचन सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा - प्रिय! प्रथम तो जैन साधु कहते ही नहीं, यदि हमारे भाग्य से उन्हों ने कह ही दिया है तो वैसा अवश्य हो होगा"।

यशा का गर्भ दिन २ बढ़ता गया और नव महीने साढ़े सात अहो रात्रि पूर्ण होने पर युग्म सन्तान का शुभ मुहूर्त में जन्म हुआ दो पुत्रों का जन्म होना सुन कर माता पिता और कुटुम्बी जनों का हृदय सहज हो में आनन्द सागर में हिलोरें मारने लगा। पिता और समस्त पारिवारिक लोगों ने बड़ा उत्सव मनाया। उन्होंने श्रद्धा और प्रेम से दीन अनाथ लोगों को अनेक प्रकार के दान दिये। पुरोहितजी के सब मित्र स्नेही और बन्धु बान्धवों ने भी पुत्र जन्म के इस आनन्द में उनको बधाई दी। सब ने मिल

। चित्र परिचय के लिये, पढ़नेके लिये नहीं है।



दो साधु रास्ता भूलने पर एक छोटा साधु पहाडी पर चढ कर समीप गाँव का मार्ग और गांव दिखा रहा है।

कर आशीर्वाद दिया कि "ईश्वर कृपा से यह संतान चिरायु हो और भविष्य में ये बालक दीर्घायु हो कर खूब यश और मान प्राप्त करें"। यद्यपि यह आशीर्वाद केवल वर्तमान समय के विचारों पर दृष्टि रख कर साधारण रीति से ही दिया गया था। जैसा कि प्रायः होता है, तथापि समय पाकर वह सार्थक हुआ। पहिले दिन "जात कर्म" किया, दूसरे दिन जागरण हुआ, तीसरे दिन बालकों को चन्द्र सूर्य के दर्शन कराये गये। इस प्रकार एक के बाद एक संस्कार को करते हुए दस दिन पूरे हुए। ग्यारहवें दिन अशौचकर्म से निवर्तन हो बारहवें दिन सम्बन्धियों को भोजन खिला पिला कर दोनों युग्मपुत्रों के नाम देवभद्र और यशोभद्र रक्खे गये। अब ये दोनों पुत्र द्वितीय चन्द्रवत् अवस्था में बढ़ने गये। यों बढ़ते २ जब पांच छः वर्ष के होने आये तब माता पिता को पिछली बात का खयाल आगया कि जो साधु अपने को पुत्र होने का कह गये थे वे पुत्र तो हो गये पर साथ में यह भी कह गये थे कि ये दोनों पुत्र संसार परित्याग कर साधु बनेंगे। अतः कहीं ऐसा न हो कि ये पुत्र अपने को छोड़ साधु बन जावें। इस लिये इसका उपाय अभी से ही ढूंढना अनुपयुक्त न होगा। अतएव प्रथम तो यह उपाय है कि यह शहर छोड़ कर किसी एक घने जंगल में जाकर निवास करें क्योंकि उन जैसे साधु तो इस शहर में हर समय आते ही रहते हैं और उनकी संगति भी ऐसी है कि क्षणमात्र में, हो संसारी को, वैरागी बना देती है। इस लिये अपने इन पुत्रों को लेकर उस घने जंगल में चल बसें जहां कोईभी साधु ऐसा न आ सके।

ऐसा विचार कर चारों व्यक्ति ने घने विपिन में जाकर

भीलों की झोंपड़ियों के बीच एक मकान बनवा लिया। वे उस ज
गल के मकान में निर्विघ्नता के साथ आनन्द से पुत्रों के साथ
जीवन व्यतीत करने लगे। पुरोहितजी पुत्रों को शिक्षा देने
देने लगे। पुरोहित के हृदय में कभी २ यह भी तरंग उठती
रहती थी कि कदाचित् जैन साधु भूले भटके इधर न चले
आवें उन साधुलोगों को भ्रम हो कहीं ये बालक साथ न
चल जावें इस लिये उन साधुओं का भयङ्कर चित्राम पहि
ले पुत्रों को दिखा देना अनुचित न होगा। ऐसा विचार कर
वह पुरोहित ने एक समय उन दोनों पुत्रों को समझाने लगा:-
'पुत्रों! मेरी एक बात जरूर ध्यान में रखना नहीं तो कभी
मारे जाओगे' पुत्रोंने कहा — पिताजी! यह कौनसी ऐसी
भयानक बात है हमें अवश्य उस बात का परिचय करा दीजिये"
तब पिताने कहा:- पुत्रों! तुम लड़कों के साथ खाओ जाओ
खेलो कूदो कोई हानि नहीं परन्तु उन लोगों का संग मत क
रना जो कि मुँह पर एक कपड़ा बाँधे हुए होते हैं हाथ में एक
कपड़े की झोली होती है उस में पात्र रखते हैं पात्रों में चाकू,
छुरी कतरनी समेत रखते हैं। वह बड़े कठोर हैं और नीची नि
गाह करते हुए चलते हैं। यदि कोई बालक उनके निगाह में
आता है तो पहिले वे उस बच्चे से बड़े प्यार से मधुर स्वरसे बो
लते हैं। और मिष्ट पदार्थ आदि के खानेका प्रलोभ भी दिखाते हैं
इस से वही बच्चा उन के पास चला जाता है फिर वे नामधारी
साधु उन्हें धोखा देकर जंगल में ले जाते हैं और वहां उन बाल-
कों के शरीर परका पहना हुआ आभूषण उतार कर उन्हें मार
डालते हैं। सो तुम सावधान रहना। पुत्रों! हमने तो तुम्हें बता
दिया है यदि इस उपरान्त भी तुम उन लोगों के पास चले ही
गये तो अवश्य ही मारे जाओगे, इस में हमारा कुछ दोष नहीं,

हम तुमको समझा चुके।" इसी बात सुनते ही डरसे दोनों पुत्र लपक कर माता पिता की छाती से चिपट गये और थर थर डर पत हुए रोते रोते बोले कि हे पिता जी। गांव बाहरतो दूर रहा पर घरसे बाहर तक भी हम नहीं निकलेंगे " पिताने समझाया "नहीं २ पुत्रो इतने अधीर नहीं होना चाहिये प्रथम तो इस विपिन में वैसे साधु आते ही नहीं यदि आवे तो ध्यान रखना उनके पास जाना मत और दौड़ कर अपने घरके भीतर चले आना। और इस बातका पूरा ध्यान रखना। पिताकी इस शिक्षा को मानकर दोनों बालक घर के आस पास ही खेलते थे और दूर न जाते थे।

कुछ दिन बीतने पर उसी जंगल में होकर दो साधु किसी नगर को जा रहे थे परन्तु वे वहां रास्ता भूल कर विपिन में इधर उधर भटकने लगे। शिष्य ने कहा- गुरुजी! मध्यान्ह का समय आ रहा है प्यास बहुत जोर से सता रही है अतःऐसा कोई उपाय करें जिस से गांव पास आते पर तक्र आदिकी याचना कर चितको शान्तता दें" गुरुने कहा-"क्या करें, अपन रास्ता भूलगये अब ऐसा करो कि उस दरख्त पर चढ़ कर आस पास देखो कोई गांव निगाह पड़ तो वहां चलें "ऐसाही किया कुछ दूरी पर एक छोटासा गांव दिख पड़ा। उसी गांव में भृगु पुरोहितभी रहता था। वे दोनों साधु वन से चलकर उसी गांव में आये और उत्तम घरकी शोध करते२ पुरोहित के घर के पास ही आ निकले। उन आये हुए साधुओं को देखते ही पुरोहितजी आंखें चढ़ गई और मनही मन कहने लगा-अरे इस छोटेसे गांव में भी यह लोग आ मरे! इसका भी पीछे नहीं छोड़ा इनके दुःख से तो शहर छोड़कर यहां आये। यहां पर भी ये यम आ खड़े हुए।खैर आये तो इनके दर्श न

द्वार पाली में यहीं भरदो ताकि पर्याप्त आहार पाने से और घरों में नहीं भटकेंगे नहीं तो आहार पानी के लिये इधर उधर अन्य घरों में भटकते हुए कहीं पुत्र न मिल जाँय। बस इसी अभिप्राय से पुरोहित बोला- ' महाराज! यहां पधारो यह ब्राह्मण का घर है"। तब वे दोनों साधु वहां गये। दही दूध, रोटा और भोजन पर्याप्त उन्हें बहरा कर पुरोहित बोला- महाराज! अब आप घरों में मत फिरिये यदि कुछ कमी हो तो यहां से और ले लीजिये, क्योंकि मेरे दो पुत्र बड़े कुपात्र और क्रोधी हैं, साधु सन्तों को देख कर उनके कपड़े फाड़ डालते हैं। उन पर पत्थर फैंकते हैं। यदि उनके पास लकड़ी हो तो उससे मारते हैं। गालियां देते हैं। ऐसे अनेक तरह से कष्ट पहुंचाते हैं अतः आप रास्ता छोड़ कर किसी एक गली के रास्ते से निकल जाय जंगल में जाकर यहां भोजन करना। गांव में कहीं न ठहरना।

पुरोहित के कहने से वे दोनों साधु गली के रास्ते से जंगल की ओर प्रस्थान कर रहे थे तो जिस गली से जा रहे थे उसी में आगे दोनों बालक खेल रहे थे। एकायक उन साधुओं पर बालकों की दृष्टि पड़ी तो चमक कर एक ने कहा- अरे भ्राता! यशोभद्र! दौड़ो २ भागो भागो। आज मौत की निशानी आ गई है। पिता ने जो चिन्ह बताये थे उन्हीं चिन्हों से चिन्हित वाले घातक आ रहे हैं। दोनों लड़के रास्ता दूसरा न होने से अपनी जान ले जंगल की ओर भागे जा रहे थे। साधु स्वाभाविक ही उनके पीछे पीछे जा रहे थे। लड़कों ने भागते हुए पीछे की ओर देखा तो जान पड़ा कि वे साधु उन्हीं की ओर जल्दी २ आ रहे हैं। इस से लड़कों ने सचमुच ही जान लिया कि ये साधु अपनी तरफ ही अपने को पकड़ने के लिये आ रहे हैं। ज्यों ज्यों वे पास आते देखते त्यों २ बच्चों का ज्ञान अधिक हैरान होने लगता था।

इधर दौड़ते २ थक गये तब एक वड के झाड पर जो समीप ही था उस पर जल्दी से चढ़ गये और पत्तों की आड़ में अपने को छिपा कर बैठ गये और एक दूसरे से कहने लगे " भाइ! खासना मत चुपचाप यहां छिप रहो जब ये नाल घातक यहां से आगे चल जावेंगे तब अपन यहां से नीचे उतर कर चले चलेंगे। उधर दोनों साधु नीची दृष्टि से देखते हुए उसी वट वृक्ष के नीचे आकर आपस में कहने लगे कि यह जगह ठीक है, अत आहार पानी यहीं खा, पी लो। उन लडकों ने यह सुना कि इन को यहीं मार कर आगे चलो। बस फिर क्या था ये बच्चे और भी अधिक थर २ कांपने लगे। उन साधुओं ने पात्र खोलने की चेष्टा की तो लडकों ने जाना कि इन्हों ने अपन को देख लिया है जिस से ये पात्रों में से मारने के लिये चाकू छुरी आदि निकाल रहे हैं। आगे पात्र खोलने पर दूध दही रोटी आदि नजर आई तब बच्चों ने विचार किया कि पात्रों में से चाकू छुरी तो निकली नहीं इनके बजाय दूध दही, रोटी निकली जो कि ऐसी अपन घर खा कर आये हैं हो न हो ये चीजें सब अपने घर की ही मालूम होती है।

इतने ही में गुरू ने शिष्य से कहा " बेटा, ध्यान रखना यहां कीडियां बहुत हैं "। कुछ ही देर पीछे बोले- " देख २ यह कीड़ी पाव नीचे न आ जावे इसे बहुत आसानी से पूजनी से दूर करो "। इस प्रकार का दृश्य उन दोनों लडकों ने ऊपर से देख कर हृदय पर हाथ धर विचार किया कि ये साधु कीड़ी तक को तो मारते ही नहीं तो फिर ये बालहत्या कैसे करेंगे। इस से स्पष्ट मालूम होता है कि जो पिता ने हम को कहा था वह असमज सा प्रतीत होता है। ऐसा विचाराश्र करते ही उन लड़कों को जाति स्मरण ज्ञान हो आया। उस समय ज्ञान के द्वारा अपने-पिता को

कायों को देखा है वे ना प्रायश्चित्त में पड़ जाता है। पिताजी यह संसार तो स्वार्थी है; अब हम इस संसार के स्वार्थी जनों में रहना नहीं चाहते; अब आप हमें तो साधु बनने की आज्ञा प्रदान करिये।" पुरोहित बोला -' पुत्रों! कुछ सोचो, विचारो; पालन में इतनी जल्दी मत करो। तुम अभी अबोध बालक हो, कोमल अवस्था है बुद्धि परिपक्व नहीं संसार सुख देखा नहीं, अभी तुम गृहस्थाश्रम में प्रवेश हुए नहीं संसार के सुखों का अनुभव किया नहीं। तुम्हारी अवस्था अभी विद्या प्राप्त करने की है इस के पीछे युवावस्था हो जाने पर गृहस्थी बनकर विषय सुखको भोगो फिर सन्तानादि हो जाने पर यदि साधु बनना चाहो तो साधु बन जाना।" लड़कों ने कहा -' पिताजी! पौद्गलिक सुख तो क्षणमात्र के हैं इस पर बाद यही व्यवस्था है। जैसे किसी तलवार की धारा पर शहद बिन्दु चाटने का कुछ थोड़ासा सुख है पर फिर अन्त में जीभ कट जाने का महा भय कर दुःख होता है; इस लिये ऐसे सुखों पर हमारी इच्छा कदापि नहीं हम तो उसी सुखको चाहना कर रहे हैं जिस में लवलेश मात्र भी दुःखकी संभावना न हो।" निदान भृगु पुरोहित ने अपने पुत्रों को भोगोपभोगों के नाना प्रकारके सुख और संयम की कठिनता दिखाई पर पुत्रों ने एक न मानी और साधु बनने की दृढ प्रतिज्ञा करली।

भृगु पुरोहितने अपने पुत्रों की दृढ प्रतिज्ञा साधु बनने की देखी तो उसे मोह के कारण सारा संसार अंधकार मय दिखाई पड़ने लगा और सोचने लगा कि इतनी भारी धन सम्पत्ति होने परभी सन्तान सुख प्राप्त नहीं होगा तो यह धन किस काम का होगा और हमारा कुल भी नष्ट हो जायगा। इन पुत्रों को सब तरह से समझाया पर ये साधु हुये बिना न

रहेंगे। जब येही घर में न रहेंगे तब संसार में गृहस्थाश्रम में रहने से लाभ ही क्या ? इस से तो इन के साथही मुनि वृत्ति ग्रहण करना उत्तम होगा। अतएव उसने भी मुनिवृत्ति ग्रहण करने की ठान ली।

भृगु पुरोहित अपनी पतिभक्ता पत्नी के पास जाकर इस प्रकार कहने लगा – प्राणप्रिये ! दोनों पुत्रों के भविष्य में जो साधुओं ने कहाथा और हमें जिस बातका भयथा जिस भय से हम नगरी छोड़कर इस वन में रहे थे वही बात आज साधुओं के आजाने से होगई। ये अपने दोनों पुत्र साधु बनने को जा रहे हैं कहो तुम्हारी क्या इच्छा है ? " पुरोहितानी कुछ देरतो च कितसी रह गई पर यह जान कर कि भविष्य में उन पुत्रोंका ऐसा ही होनाथा। धीरज धर कर स्वामी से बोली – ' स्वामी ! पुत्र संसार परित्याग करें तो उन्हें करने दो। यह अपार सम्पत्ति जिस के लिये मनुष्य रात दिन परिश्रम करते हैं और अनेक छल कपट से धन इकट्ठा करते हैं उस अतुल धन राशिको क्यों खोवें आओ पुत्रों का मोह छोड़ अपन दोनों ही संसार के सुख और ऐश्वर्यका भोग भोगें। " पुरोहित बोला – प्रिये ! नहीं नहीं ! सुख भोगने ? अंतिम अवस्था आगई है फिर भी भोगने की उत्कृष्ट इच्छा तुम्हें हो रही है। देखो तो सही जो अभुक्त भोगी हैं वे तो संयम ले रहे हैं और हम भुक्तभोगी और भी सांसारिक सुखों के भोगने के लिये संसार में बैठ रहे। क्या हमारी बुद्धि इन बालकों से भी हीन है ? कभी नहीं ऐसा न होगा। मैं भी इन बालकों के साथ संसार परित्याग कर मुनिव्रत लूंगा। यदि तेरी इच्छा हो तो तू भी संसार परित्याग कर। " जब ' यशा " ने देखा कि स्वामी रहने के नहीं, पुत्र रहने के नहीं जिन से सारे संसारका सुख था तब मैं ही अकेली स॰

सारमें क्या करूंगी ? इसकी तरह स मैं भी अपनी आत्मा का कल्याण क्यों न करू।" ऐसा पक्का विचार कर चारों ही व्यक्ति नगरी में आकर अपनी अतुल धन राशि को छोड साधु बन ने को घर से चल निकले।

यह समाचार सारी नगरी में बिजली की भाँति फैल कर राजा तक पहुचा । राजा न उस समय के नियमानुसार 'जिस धन का कोई स्वामी न रह जाय वह कोष में मगा लिया जाय, पुरोहित क सार धन सम्पत्तिको राज-कोष में डालने के लिय अनुचरों का आज्ञा देदी। वे लोग पुरोहित की सारी धन सम्पति को ला लाकर राज्य कोष में डालने लगे। यह समाचार रानी कमलावती का मालुम हुआ तो उस न राजा स निवेदन किया - प्राणनाथ ! दान में जो द्रव्य आप दे चुके हो उसे पीछा लौटाना बुद्धिमानों का काम नहीं है दिये दान का तो छूनेका भी विचार न करना चाहिये । राजा बोला - 'रानी ! सभलकर वाला राज्य भडार में तो ऐस ही धन आता जाता है यदि तुम्हारे को पसन्द न हो तो ससार में क्यों बैठा हुई इसी धन मे मौज उडा रही हो ? " रानी बोली- ' प्राणनाथ ! म इस मौज को मौज नहीं समझती वरन् बन्धन समझती हू। जैसे सोन के पिंजरे में तोता भी बन्धन रूप दुःख अनुभव करता है । इसी प्रकार हे राजन् मैं भी इन पौद्गलिक सुखों को बधन में दुःख समझती हूँ । मेरा मन इन सुखों से उपरति हो रहा है । आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं भी साध्वी बनूगी और इसकी मुझ उत्कट इच्छा हो रही है सो हे स्वामी, इस विनय को स्वीकार कीजिये और श्रीमहाराज आपसे भी विनय करती हू कि आपभी सोचिये क्या

आप अमर होकर आये है ? आप जैसे अनेक राना इस भू मण्डल पर चक्रवर्ती होकर अन्त इस नश्वर शरीर को छोड कर चल बसे ! यह पृथ्वी यह वैभव, यह हकूमत, यह राज भण्डार यह हाथी-घोड आदि सब वैभव यहा का यहीं रह गया कोई भी प्यारा बान्धव, स्नेही, मित्र, सेना शत्रु साथ में न चला ! यदि आपने इन सब ठाट पाट, सुख-चैन, वैभव को न छोड़ा तो एक दिन ऐसा आवेगा कि जब ये सब स्वय ही आप को छोड देंगे। तब आप स्वय ही राज्य सुखों को छोड मोक्ष जानेका प्रयत्न क्यों न करें। ' इतना सुनते ही राजाको भी वैराग्य हो आया और वैराग्य अवस्था में आकर अपने पुत्र को राज्य भार सौंप दिया और आप स्वय रानीको वैराग्य की आज्ञा दे कर सयमी बनाई। तदनु राना और रानी पुरोहित और पुरोहितानी दोनों बालक ये छओं ही व्यक्ति सयम धारण कर अनेक जन्म जन्मान्तर के किये हुए पापों को तपरूप से भस्म कर मोक्ष चले गये। इति शम्



ॐ

असिआउसाय नमः

मङ्गलाचरणम्

मङ्गल भगवान् वीरो, मङ्गल गौतमः प्रभुः ।
मङ्गल स्थूल भद्रार्यो, जैन धर्म्मोऽस्तुमङ्गलम् ॥ १ ॥



मूल-देवा भवित्ताण पूरे भवम्मि,
केई चुया एगविमाणवासी ।
पुरे पुराणे उसुयारनामे,
खाए समिद्धे सुरलोगरम्मे ॥ १ ॥

सकम्मसेसेण पुराकएण,
कुलेसु दग्गेसु य ते पसूया ।
निव्विणसंसारभया जहाय,
जिणिन्दमग्गंसरणंपवन्ना ॥ २ ॥

छाया-देवा भूत्वा पूर्वस्मिन् भवे, केचिच्च्युता एकविमानवासिनः।
पुरे पुराणे इषुकारनाम्नि, ख्याते समृद्धे सुरलोकरम्ये ॥ १ ॥
स्वकर्मशेषेण पुरा कृतेन, कुलेषूदग्रेषु ते प्रसूताः ।
निर्विण्णाः संसारभयाद्धित्वा, जिनेन्द्रमार्गं शरणं प्रपन्नाः ॥ २ ॥

अन्वयार्थ-(केचित्) कई एक (पूर्वस्मिन्) पहिले (भवे) जन्म में (एकविमानवासिनः) एक विमान में रहने वाले (देवा) देव (भूत्वा) हो कर 'तदनु वहां से' (च्युता) पतन को प्राप्त हो (पुरा) पूर्व जन्म में (कृतेन) किये हुए (स्वकर्मशेषेण) अपने कर्म के अवशिष्ट अंश से (ख्याते) सुप्रसिद्ध (समृद्धे) समृद्धिशाली (सुरलोकरम्ये) स्वर्ग के समान रमणीय (इक्षुकारनाम्नि) इक्षुकार नामक (पुराणे) प्राचीन (पुरे) नगर में (ते) वे (उदग्रेषु) ऊंचे (कुलेषु) कुलों में (प्रसूता) उत्पन्न हुवे (संसारभयात्) संसार के भय से (निर्विण्णा) उद्वेग पा कर (त्यक्त्वा) 'संसार का' परित्याग कर (जिनेन्द्रमार्गं) जिनेन्द्र के मार्ग की (शरण) शरण (प्रपन्ना) प्राप्त हुए ॥ १ ॥ २ ॥

भावार्थ-कई एक जीव पहले जन्म में एक ही पद्मगुल्म नाम के विमान में अपनी आयु पूर्ण कर पूर्व भव के संचित शुभ कर्म के रहे हुए शेष भाग से सुरलोक के सदृश मनोहर प्रसिद्ध धन धान्य आदि समृद्ध युक्त इक्षुकार नामक नगर में प्रधान कुल में उत्पन्न हुए। तदनु कुछ समय के बाद सद्गुरु के सद्बोध द्वारा संसार के जन्म मरण आदि दुःखों से भयभीत हो कर जिनेन्द्र भगवान के प्ररूपित मार्ग के शरण को प्राप्त हुए ॥ १ ॥ २ ॥

मूल-पुमत्तमागम्म कुमार दोऽवि,
पुरोहिओ तस्स जसा य पत्ती ।

विसालकित्ती य तहे सुयारो,
रायऽत्थ देवी कमलावई य ॥ ३ ॥

छाया-पुंस्त्वमागम्य कुमारौ द्वावपि, पुरोहितस्तस्य यशाश्च पत्नी।
विशालकीर्त्तिश्च तथेषुकारो-राजाऽत्र देवी कमलावती च ॥३॥

अन्वयार्थ-(अत्र) यहा पर (पुंस्त्वम्) पौरुष्य पने (आगम्य) प्राप्त हुए (द्वौ) दोनों (अपि) प्रधानता सूचक (कुमारौ) कुमार (पुरोहितः) 'तीसरा' पुरोहित (च) और 'चौथा' (तस्य) उसकी (पत्नी) औरत (यशाः) यशा नाम वाली (तथा) वैसे ही 'पाचवा' (विशालकीर्त्तिः) विस्तीर्णकीर्त्ति वाला (इषुकारः) इषुकार नामक (राजा) नरेश (च) और 'छट्ठा' (देवी) राणी (कमलावती) कमलावती नाम की हुई ॥ ३ ॥

भावार्थ-छ पुरुष यथा शक्ति धर्म क्रिया कर एक ही स्वर्ग के एक ही विमान में छ ही देवता हुए थे। वहा वे अपना २ आयु पूर्ण कर उन छओं में से एक देव यहा इषुकार नाम के नगर में इषुकार नामक नरेश हुआ। और दूसरा एक देव इसी राजा के कमलावती राणी हुई। तीसरा एक देव इसी नगर में भृगु नामक राज्य पुरोहित हुआ। और चौथा एक देव इसी पुरोहित के यशा नाम वाली औरत हुई। और दो देव राज्य पुरोहित के पुत्र पने आकर हुए॥ ३ ॥

मूल-जाईजरामच्चुभयाभिभूया,
बहिंविहाराभिनिविट्ठचित्ता।

संसारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा,
दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता ॥ ४ ॥

छाया-जातिजरामृत्युभयाभिभूतौ, बहिर्विहाराभिनिविष्टचित्तौ ।
संसारचक्रस्य निमोचणार्थं, दृष्ट्वा तौ कामगुणेषु विरक्तौ ॥ ४॥

अन्वयार्थ-(जातिजरामृत्युभयाभिभूतौ) जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु भय से भयभीत होने वाले (बहिर्विहाराभिनिविष्टचित्तौ) संसार से बहारका स्थान में आशक्त चित्तवाले (तौ) वे दोनों कुमार (दृष्ट्वा) ' उन साधुओं ' देख कर (संसारचक्रस्य) संसारचक्र को (निमोक्षणार्थं) दूरकरने के लिये (कामगुणेषु) विषय वासना से (विरक्तौ) विरक्त हुवे ॥ ४ ॥

भावार्थ-संसार में जन्म जरामृत्यु आदि भयों से भयभीत होने वाले और संसार से बहार का जो स्थान (मोक्ष) उस स्थान को प्राप्त करने के लिये आसक्त चित्त वाले वे दोनों राज्य पुरोहितके पुत्र सद्गुरु को देख कर संसार के संपूर्ण विषय वासनाओं से विरक्त हुए ॥ ४ ॥

मूल-पियपुत्तगा दोन्निवि माहणस्स,
सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स ।
सरित्तु पोराणिय तत्थ जाइं,
तहा सुचिण्णं तव संजमं च ॥ ५ ॥

१-पंचमी ।यमर्कि के स्थान में सप्तमी हुई ।

छाया- प्रियपुत्रकौ द्वावपि ब्राह्मणस्य,
स्वकर्मशीलस्य पुरोहितस्य।
स्मृत्वा पौराणिकीन्तत्र जातिं,
तथा सुचीर्णं तपः संयमं च ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ (स्वकर्मशीलस्य) अपने कर्म काण्डों में निपुण (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण (पुरोहितस्य) पुरोहित के (द्वावपि) दोनों ही (प्रियपुत्रकौ) प्रिय पुत्र (तत्र) वहाँ, (पौराणिकीं) पूर्व (जातिं) जन्मको (तथा) तथा प्रकार का (सुचीर्णं) अङ्गिकार किया हुआ (तप) तपव्रत (च) और (संयम) संयमको (स्मृत्वा) स्मरण कर ॥ ५ ॥

भावार्थ-अपने क्रिया काण्ड में निपुण ऐसा जो वह पुरोहित ब्राह्मण उसके उन दोनों प्रिय पुत्रों ने जाति स्मरण ज्ञान द्वारा विचार किया कि अपने ने अगले जन्म में किस प्रकार का तपव्रत और संयम अङ्गीकार किया था वह सब उनको भासित होने पर फिरभी वैसा ही करने के लिये उत्तेजित हुए ॥ ५ ॥

मूल-ते कामभोगेसु असज्जमाणा,
माणुस्सएसु जे यावि दिव्वा।
मोक्खाभिकङ्खी अभिजायसड्ढा
तायं उवागम्म इमं उदाहु ॥ ६ ॥

छाया-तौ कामभोगेष्वसजन्तौ, मानुष्यकेषु ये चापि दिव्याः।
मोक्षाभिकाङ्क्षिणावभिजातश्रद्धौ तातमुपागम्येदमुदाहरताम् ॥६॥

अन्वयार्थ (माणुस्सएसु) मनुष्य सम्बन्धी (ये चापि) जो और भी (दिव्या) देवता सम्बन्धी (काम भोगेषु) काम भोगोंमें (असज्जन्तौ) ससर्ग नहीं करते हुए (अभिजात-श्रद्धौ) उत्पन्न हुई है तत्त्व रुची ऐसे (मोक्षाभिकांक्षिणौ) मोक्षकी इच्छा करने वाले (तौ) व दोनों पुत्र (तातमुपागम्य) पिता के पास आकर (इदं) इस प्रकार (उदाहरताम) कहते हुए ॥ ६ ॥

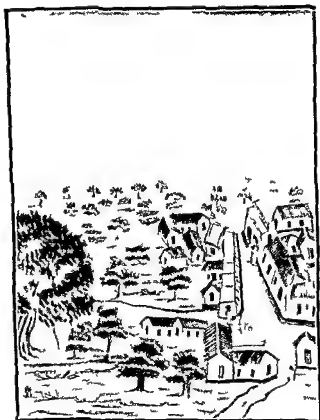
भावार्थ-उत्पन्न हुई है तत्त्व रुची जिनकी ऐसे वे दोनों पुत्र मोक्षाभिलाषा मनुष्य सम्बन्धी और देवता सम्बन्धी काम भोगों का ससर्ग नहीं करते हुवे अपने पिता के पास आकर इस प्रकार कहने लगे ॥ ६ ॥

मूल-असासयं दट्ठु इमं विहारं,
बहुअंतराय न य दीहमाउं ।
तम्हा गिहंसि न रइं लभामो,
आमंतयामो चरिस्सामु मोणं ॥ ७ ॥

छाया-अशाश्वतं दृष्ट्वेमं विहारं, बह्वन्तराय न च दीर्घमायुः ।
तस्माद्गृहे न रतिं लभामहे, आमन्त्रयावहे चरिष्यामो मौनं ॥७॥

अन्वयार्थ-(इमं) यह (विहारं) मनुष्य भव अशाश्वत) हमेशा का नहा है 'तदपि (बह्वन्तराय) बहुत अन्तराए है, (च) और (आयु) उम्र (दीर्घम्) लम्बी (न) नहीं है 'ऐसा' (दृष्ट्वा) देख कर (तस्मात्) इस कारण से (गृहे) घर में (रतिं)

। चित्र परिचय के लिये, वन्दनेके लिये नहीं है।



दोनों साधु गांव में प्रवेश हो रहे हैं आगे उहे भृगु परोहित और उसकी स्त्री दोनो आहार बहरा रहे हैं दो बालक गेंद खेल रहे हैं ।

अन्वयार्थ (मानुष्यकेषु) मनुष्य सम्बन्धी (ये चापि) जो और भी (दिव्या) देवता सम्बन्धी (कामभोगेषु) काम भोगोंमें (असंसजतौ) ससर्ग नहीं करते हुए (आभिजात-श्रद्धौ) उत्पन्न हुई है तत्र रुची ऐसे (मौक्षाभिकांक्षिणौ) मोक्षकी इच्छा करने वाले (तौ) वे दोनों पुत्र (तातमुपागम्य) पिता के पास आकर (इदं) इस प्रकार (उदाहरताम) कहते हुए ॥ ६ ॥

भावार्थ-उत्पन्न हुई है तत्र रुची जिनको ऐसे वे दोनों पुत्र मोक्षाभिलाषा मनुष्य सम्बन्धी और देवता सम्बन्धी काम भोगों का ससर्ग नहीं करते हुये अपने पिता के पास आकर इस प्रकार कहने लगे ॥ ६ ॥

मूल-असासयं दट्ठु इमं विहारं,
बहुअंतरायं न य दीहमाउं ।
तम्हा गिहंसि न रइं लभामो,
आमंतयामो चरिस्सामु मोणं ॥ ७ ॥

छाया-अशाश्वतं दृष्ट्वेमं विहारं, बहन्तरायं न च दीर्घमायुः ।
तस्माद्गृहे न रतिं लभावहे, आमन्त्रयावहे चरिष्यामो मौनं ॥७॥

अन्वयार्थ-(इमं) यह (विहारं) मनुष्य भव अशाश्वत) हमेशा का नहीं है 'तदपि' (बहन्तरायं) बहुत अन्तराए है, (च) और (आयु) उम्र (दीर्घम्) लम्बी (न) नहीं है 'एवं' (दृष्ट्वा) देख कर (तस्मात्) इस कारण से (गृहे) घर में (रतिं)

भृगु चरित्र

। चित्र परिचय के लिये, धन्दनेके लिये नहीं है।



दोनों साधु गाव में प्रवेश हो रहे हैं आगे उ है भृगु परोहित और उसकी स्त्री दोनो आहार बहरा रहे हैं दो बालक गेंद खल रहे हैं ।

आनन्द को (न) नहीं (लभावहे) प्राप्त कर सके (आमन्त्रया वहे) हम पूछते हैं आपको (मौनं) दीक्षा (चरिष्याम') अङ्गीकार करेंगे ॥ ७ ॥

भावार्थ-हे पिता श्री! यह मनुष्य भव अल्प आयु वाला सदैव रहने का नहीं है नश्वर है। और इस स्वल्प आयु में भी भागोपभाग भोगने के लिये खासी धासी बुखार निद्रा शोक आदि अनेक प्रकार की बाधाएं आ खड़ी होती हैं। एसी अनित्य अवस्था में उस परम शाश्वत सुखों का छोड़ कर गृहस्थाश्रम के पौद्गलिक क्षणिक सुखों में हमें आनन्द नहीं प्राप्त होता है। अत एव हम मुनिवृत्ति ग्रहण करेंगे। आप हमें आज्ञा प्रदान करें ॥ ७ ॥

मूल-अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं,
तवस्स वाघायकरं वयासी।
इमं वयं वेयविओ वयन्ति,
जहा न होई असुयाण लोगो ॥ ८ ॥

छाया-अथ तातकस्तत्र मुन्योस्तयोस्तपसोव्याघातकरमवादीत्। इमां वाचं वेदविदो वदन्ति, यथा न भवत्यसुतानां लोकः ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ-(अथ) इस के बाद (तातक') पिता (तत्रः) तहाँ (मुन्योः) 'भाव' 'मुनि (तयो') उन्ह के (तपसः) तपस्या को (व्याघातकर) बाधा पहुंचाने को (अवादीत्) कहने लगा (वेदविद) वेद के जानने वाले (इमा) यह (वाच) वचन (वदन्ति) कहते (यथा) जैसे (असुतान) विना पुत्र (लोकः) परलोक (न) नहीं (भवति) होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ-इस प्रकार दोनों पुत्रों के दीक्षा की आज्ञा याचने के बाद इन्हीं के पिता भृगु-पुरोहित उन दोनों भाव मुनियों के तप, संयम का व्याघात पहुंचाने के लिये इस प्रकार कहने लगा कि हे पुत्रों! इस संसार में वेद के जानने वाले तत्वज्ञ यह कहते हैं कि बिना सन्तान हुए उनकी सद्गति नहीं होती ॥ ८ ॥

मूल-अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे,
पुत्ते परिट्ठप्प गिहंसि जाया ।
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहि,
आरण्णगा होह मुणी पसत्था ॥ ९ ॥

छाया-अधीत्य वेदान्परिवेष्य विप्रान्पुत्रान् परिष्ठाप्य गृहे जातौ ।
भुक्त्वा भोगान् सहस्त्रीभिरारण्यकौ भवत मुनी प्रशस्तौ ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ-(जातौ) हे पुत्रों (वेदान्) वेदों को (अधीत्य) पढ़ कर (विप्रान्) ब्राह्मणों को (परिवेष्य) भोजन करा कर (स्त्रीभि,) स्त्रियों के (सह) साथ (भोगान्) भोगों को (भुक्त्वा) भोग कर (गृहे) घर में (पुत्रान्) पुत्रों को (परिष्ठाप्य) स्थापन कर (आरण्यकौ) वान प्रस्थ (मुनी) साधु (भवतम्) होना (प्रशस्तौ) प्रशंसनीय है ॥ ९ ॥

भावार्थ-हे पुत्रों? हमारा तुम से यह कहना है कि पहले वेद शास्त्र पढ़ो, ब्राह्मणों को खूब खिलाओ पिलाओ स्त्रियों के साथ भोग भोगो, दो चार पुत्र होने के बाद उन पुत्रों को होशियार कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर दे फिर तुम को मुनिवृत्ति ग्रहण करना प्रशंसनीय है ॥ ९ ॥

मूल-सोयग्गिणा आयगुणिंधणेणं,
मोहाणिला पज्जलणाहिएणं ।
सतत्तभाव परितप्पमाणं,
लालप्पमाणं बहुहा बहु च ॥ १० ॥

पुरोहियं तं कमसोऽणुणंतं,
निमंतयंतं च सुए धणेणं ।
जहक्कमं कामगुणेहि चेव,
कुमारगा ते पसमिक्ख वक्कं ॥ ११ ॥

छाया-शोकाग्निनात्मगुणेन्धनेन, मोहानिलादधिकप्रज्वलेन ।
सतप्तभाव परितप्यमान, लालप्यमान बहुधा बहु च ॥ १० ॥
पुरोहित त क्रमशोऽनुनयन्त, निमत्रयन्त च सुतौ धनेन ।
यथाक्रम कामगुणैश्चैव,कुमारकौ तौ प्रसमीक्ष्य वाक्य(ऊचतुः)॥ ११

अन्वयार्थ-(आत्मगुणेन्धनेन) आत्मा के गुण रूप इन्धन (मोहानिलात्) मोह रूप हवा (अधिकप्रज्वले) 'द्वारा' प्रज्वलित (शोकाग्निना) शोक रूप अग्नि से (सतप्त भाव) सन्तापभाव हुए हैं ऐसा (परितप्यमान) परित्रास पाता हुआ (बहुधा) बहुत प्रकार के (बहु) बहुत से (लालप्यमान) लालच (क्रमशः) क्रम से (सुतौ) पुत्रों को (अनुनयन्त) जिताता हुआ (यथाक्रम) यथाक्रम (धनेन) धन कर के (च) और (कामगुणै) स्त्रीभाग कर के (एव) निश्चयार्थ (निमन्त्र-

यन्त) निमन्त्रण करते हुवे (त) उस (पुरोहित) पुरोहित को (प्रसमीक्ष्य) देखकर (तौ) वे दोनों (कुमारकौ) कुमार (वाक्य)' उचतु'' कहते हुए ॥ १० ॥ ११ ॥

भावार्थ-दोनों पुत्रों को पिताने बहुत समझाया पर वे दोनों पुत्र अपने प्रण से एक बाती पीछे न हटे तब शोक रूप अग्नि आत्मा मे मण रूप ई धन, मोह रूप हवा मे प्रज्वलित हुआ हृदय जिसका ऐसा यह पुरोहित संताप और परिताप पाता हुआ औरभी अपने पुत्रों के वैराग्य पथ से पृथक् करने के लिये नाना प्रकार के बहुत से धन धान्य स्त्रीभोग आदि सुन्दर भोगोपभोगों का निमन्त्र भाग्योंके साथ निमंत्रण करता हुआ। पिताको अज्ञान से आछादित देखकर वे दोनों कुमार यों बोले॥ १० ॥ ११ ॥

मूल-वेया अहीया न भवन्ति ताण,
मुत्ता दिया निंति तमं तमेण।
जायाय पुत्ता न हवन्ति ताण,
को णाम ते अणुमन्नेज्जएय ॥ १२॥

छाया वेदा आधीता न भवन्ति त्राण,
भुक्ता द्विजा नयति तमस्तमसा।
जाताश्च पुत्रा न भवन्ति त्राण,
को नाम तेऽनुमन्येतैतत् ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ-(वेदा) वेदों को (अधीता) पढने से ही वेद (त्राण) शरणभूत (न) नहीं (भवन्ति) होते हैं (द्विजाः) 'पथ

च्युत' ब्राह्मणों को (भुक्ता) जिमाने से (तमसा) अज्ञान कर के (तमः) अधोगति को (नयति) प्राप्त होते हैं (च) और (पुत्राः) पुत्र (जाताः) होने से (त्राणं) शरणं (न) नहीं (भवन्ति) होते हैं तब (कः) कौन (नाम) ऐसा (ते) तुम्हार (एतत्) ये 'वाक्य' (अनुमन्येत्) मान सकता है ॥ १२ ॥

भावार्थ हे पिता श्री ! केवल वेद शास्त्रों (ज्ञानशास्त्रों) को पढने से वह शरण भूत नहीं होते हैं । क्योंकि केवल पढने मात्र ही से क्या ! वेद पढने के बाद सत्य कर्मों में प्रवर्त्ती करें । उसी के वेद पढना इस भव परभव में शरण भूत हो सकता है । इसी प्रकार श्रीमद्भागवत के ७ वें स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय के २१ वें श्लोक और श्री० मद्गीता के अठारवें अध्यायके ४२ वें श्लोक से विमुख अगुओं को धारण करने वाले ब्रह्म पथ स पतित, व्यभिचारी, असत्यवादी, अनेक असद्गुणों का भण्डारी, केवल नाम मात्र क ब्राह्मणों को भोजन खिलाने से परलोक में त्राण (शरण) तो दूर रह पर अपमान कर क अन्धकार के स्थानको प्राप्त होते हैं। और न कोइ पुत्र परलोक में त्राण शरण हो सकते हैं। तब कौन ऐसा मूढ है जो भोगोपभोग के लिये आप के ये वाक्य मानें ॥ १२ ॥

मूल-खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा,
पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा ।
ससारमोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥ १३ ॥

छाया-क्षणमात्रसौख्या बहुकालदुःखा,
प्रकामदुःखा अनिकामसौख्या ।
संसारमोक्षस्य विपक्षीभूता,
खानिरनर्थाना तु कामभोगा ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ-(कामभोगाः) काम भोग (तु) पद पूर्णार्थ (क्षणमात्रसौख्याः) क्षणिक सुख वाले (बहुकालदुःखाः) बहुकाल तक दुःख देने वाले हैं (प्रकामदुःखाः) 'भोगों में' उत्कृष्ट दुःख है (अनिकामसौख्या) किंचित्मात्र सुख (संसारमोक्षस्य) संसार से निवर्तन होने को (विपक्षीभूता) 'ये भोग' वैरी के समान (अनर्थाना) अनर्थों की (खानि) खदान हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ-हे पिता श्री ! ये काम भोग क्षण मात्र के सुख देने वाले हैं। फिर उन के परिणाम अन्त में बहुत ही दुःखदायी होते हैं। इन में किसी प्रकार का सुख न समझें जैसे कहा तो पवन के समान दुःख और कहा विचारा फकर के समान पौद्गलिक सुख है इस लो हे पिता देव सुखों पर न रीझेंगे। क्योंकि यह थोड़ा सा सुख भी सम्पूर्ण मोक्ष के सुखों का वैरी है। और संसार में जितने भी परिभ्रमण करने के कारण हैं वे सभी इसी काम भोग रूप खान ही में से निकलते हैं ॥ १३ ॥

मूल-परिव्वयते अणियत्तकामे,
अहो य राओ परितप्पमाणे ।

अन्नप्पमत्ते धणमेसमाणे,
पप्पोति मच्चुं पुरिसे जरं च ॥ १४ ॥

छाया-परिव्रजन्ननिवृत्तकामाऽह्नि च रात्रौ परितप्यमानः ।
अन्नप्रमत्तो धनमेषयन्, प्राप्नोति मृत्युं पुरुषो जरां च ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ-(अन्नप्रमत्त) भोजन की प्राप्ति में आसक्त, (धनम्) धन को, (एषयन्) ढूंढ़न के लिये, (परिव्रजन्) परिभ्रमण करता हुआ, (अह्नि) दिन, (च) और (रात्रौ) रात्रि भर, (परितप्यमानः) चिन्ता ग्रसित, (पुरुषः) मनुष्य, (अनिवृत्तकामः) अतृप्त इच्छा वाला, (जरां) अवस्था को 'प्राप्त हो कर' (च) और, (मृत्यु) मृत्यु को, (प्राप्नोति) प्राप्त हो जाता है ॥ १४ ॥

भावार्थ-हे पिता श्री ! जो भोगों से दूर नहीं हुआ है वह अतृप्त इच्छावाला मनुष्य विषय वासना और खान पान धन आदि इकट्ठे करने के लिये रात दिन चिंता में पड़ा हुआ इधर उधर भटकता फिरता है यों भटकते २ वृद्धावस्थाको प्राप्त होकर आखिर मृत्यु को प्राप्त होजाता है ॥ १४ ॥

मूल-इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि,
इमं च मे किच्चं इमं अकिच्चं ।
तं एवमेवं लालप्पमाणं,
हरा हरंति त्ति कहं पमाए ॥ १५ ॥

छाया-इदञ्च मेऽस्तीदञ्च नास्तीदञ्च मे कृत्यमिदमकृत्यम् ।

तमेवमेवं लालप्पमाणं, हरा हरन्तीति कथं प्रमादः ॥ १५ ॥

(इदम्) यह 'स्वर्ण' (मे) मेरे (अस्ति) है (च) और (इदम्) यह 'हीरा पन्ना' (न) नहीं (अस्ति) है (च) और (इदम्) यह 'मकान' (मे) मेरे को (कृत्यम्) करना योग्य (च) और (इदम्) यह 'व्यापार' (अकृत्यम्) नहीं करने योग्य है (एवमेव) इस प्रकार (लालप्यमान) 'नित्य' ललचाता है (हरा) रात 'दिन रूप समय' और (स) उस पुरुष को (हरन्ति) 'जीवन समाप्ति तक' नाश करता है (इति) अतएव (प्रमाद) 'तब' आलस्य (कथ) क्या किया जाय ॥१५॥

भावार्थः- 'इस संसार में मनुष्य मात्र इस प्रकार में फँसे हुए हैं कि इसको तो मैं पाया हूँ, इसकी अभी और आवश्यकता है। यह अमुक व्यापारको करना योग्य है। और अमुक व्यापार नहीं करने योग्य है। इसी चिन्ता में रात दिन लगा रहता है, पर यह नहीं जानता है कि रात दिन समय रूप चोर उस जन्मायुओं का नाश करने का नित्य प्रयत्न करता है। ऐसी अवस्था में हमें धर्म कार्यों में प्रमाद करना ठीक नहीं है ॥ १५ ॥

मूल- धणं पभूयं सह इत्थियाहिं,
सयणा तहा कामगुणा पगामा।
तवं कए तप्पइ जस्स लोगो,
तं सव्वसाहीणमिहेव तुब्भं ॥ १६ ॥

छाया–धनं प्रभूतं सह स्त्रीभिः स्वजनास्तथा कामगुणाः प्रकामाः।
तपः कृते तप्यते यस्य लोकस्तत्सर्वं स्वाधीनमिहैव युवयोः ॥१६॥

अन्वयार्थ–(प्रभूत) बहुत (धन) द्रव्य (सह स्त्रीभिः) साथ में स्त्री (स्वजनाः) परिवार (तथा) वैसे ही (प्रकामाः) खूब (कामगुणाः) काम भोग (तपः) कष्ट (कृते) इत्यादि को प्राप्त करने के निमित्त (यस्य) जिसके (लोकः) मनुष्य (तप्यते) परिश्रम उठाते हैं (तत्) वे (सर्वम्) सब (युवयोः) तुमको (इहैव) यहाँ पर ही (स्वाधीनम्) स्वाधीन हैं ॥१६॥

भावार्थ–हे पुत्रों! संसार में जो धन, स्त्री, परिवार भोगोपभोग आदि को प्राप्त करने के लिए मनुष्य अनेक प्रकार का कष्ट और भाँति २ का परिश्रम उठाते हैं पर तुम्हें तो बिना ही परिश्रम किये हुए यहाँ सब कुछ प्राप्त हो रहे हैं। फिर तुम्हें इन सुखों को त्यागने के लिये फिर क्यों [illegible] रहे हो। ॥१६॥

मूल–धणेण किं धम्मधुराहिगारे,
सयणेण वा कामगुणेहि चेव।
समणा भविस्सामु गुणोहधारी,
बहिंविहारा अभिगम्म भिक्खं ॥१७॥

छाया–धनेन किं धर्मधुराधिकारे,
स्वजनेन वा कामगुणैश्चैव।
श्रमणौ भविष्यावो गुणौघधारिणौ,
बहिर्विहारावभिगम्य भिक्षाम् ॥१७॥

अन्वयार्थ-(धर्म्मधुराधिकारे) जर्म है अग्रसर जिसके ऐसे अधिकार में उसके (धनेन) धन कर के (किं) क्या (वा) अथवा (स्वजनेन) परिवार कर के क्या (च) और (कामगुणे') कामभोगों कर के (एव) ही ' क्या ' (गुणौघधारिणौ) गुण समूह को धारण करने वाले (श्रमणौ) साधु (भविष्याव) होंगे (भिक्षाम्) भिक्षा को । अभिगम्य) ' निर्दोष , जानकर (बहिर्विहारौ) ' ग्राम से , बहार गमन करेंगे ॥ १७ ॥

हे पिता श्री ! जिस के हृदय में धर्म प्रविष्ट कर गया है उसे न धन, न स्वजन न काम भोगों की ही आवश्य कता है और न वह उसकी प्राप्ति के लिये इच्छा करता है । इसी प्रकार हमको भी जो आप कह रहे हैं उन में स किसी भी वातकी आवश्यकता नहीं है। हाँ जिन चाह रहे हैं उसी लिये शान्त दान्त गुणों का धारण कर अप्रतिबद्ध पथिक जैसे भूमण्डल में विचरेंगे । और निर्दोष आहार पानी का जान कर उसे भिक्षा रूप में ग्रहण करते हुए संयम का निर्वाह करेंगे ॥ १७ ॥

मूल-जहा य अग्गी अरणीअसन्तो,
खीरे घय तेल्लमहा तिलेसु ।
एमेव जाया सरीरंसि सत्ता,
समुच्छई नासइ नावचिट्ठे ॥ १८ ॥

छाया-यथा चाग्नि अरणितोऽसन् क्षीर घृत तैलमथ तिलेषु ।

ग्नमेव जातौ शरीरे सत्ता, सम्मूर्च्छति नश्यति नावतिष्ठते ॥१८॥

अन्वयार्थ-(जातौ) हे पुत्रों ! (यथा) जैसे (अग्निः) आग (अरणितः) अग्निकाष्ठमथन मे (असन्) नहीं होने पर भी (सम्मूर्च्छति) उत्पन्न होती है (क्षीरे) दुग्ध में (घृत) घी (अथ) शब्द की भिन्नता (तिलेषु) तिलों में (तैल) तेल ' यों ही उत्पन्न होजाते हैं ' (एवमेव) ऐसे ही (शरीरे) शरीर में (सत्ता) जीव ' उत्पन्न हो जाते हैं ' (नश्यति) ' शरीर ' नाश होता है ' उस समय जीव भी ' (न) नहीं (अवतिष्ठते) ठहरता है ॥ १८ ॥

भावार्थ-हे पुत्रों ! जैसे अरणि के काष्ठ मथन से अग्नि, दुध में घी, तिलों में तेल यों ही उत्पन्न हो जाते हैं । वास्तविक रूप में उन में अग्नि, दुग्ध घी नहीं हैं । वैसे ही इस शरीर में भी वह जीव जो तुम कहते हो वह यों ही पांच तत्वों का संयोग मिलने पर उत्पन्न हो जाता है । जब पाँच तत्व (शरीर) नष्ट होते हैं तब जीव (आत्मा) भी समूल नष्ट हो जाता है न स्वर्ग है, न नर्क है न मोक्ष केवल यह तो इन्द्रजाल है । किस के लिये तुम व्यर्थ ही साधु बनकर इस शरीर को कष्ट पहुँचाने का सहास कर रहे हो ॥ १८ ॥

मूल-नो इंदियगेज्झ अमुत्तभावा,
अमुत्तभावा वि य होइ निच्चो ।

अज्झत्थहेउं निययऽस्स बंधो,
संसारहेउं च वयंति बंधं ॥ १९ ॥

छाया-नोइन्द्रियग्राह्योऽमूर्तभावादमूर्तभावादपि च भवति नित्यः ।
अध्यात्महेतुर्नियतोऽस्य बन्धः, संसारहेतुं च वदन्ति बन्धम् ॥१९॥

अन्वयार्थ-(अमूर्तभावात्) 'आत्मा का' अरूप भाव होने से (इन्द्रियग्राह्य) इन्द्रियों द्वारा ग्रहण (न) नहीं हो सकता (च) और (अपि) भी (अमूर्तभावात्) अरूप होने से (नित्य.) हमेशा (भवति) होता है (अध्यात्महेतु) आन्तरिक दुर्गुणों का हेतु (अस्य) इसका (नियत) निश्चय (बन्ध) बन्धन है (च) और (संसारहेतु) संसार में 'परिभ्रमण रूप' हेतु (बन्धम्) बन्धन (वदन्ति) 'तत्त्वज्ञ' कहते हैं ॥ १९ ॥

भावार्थ हे पिता श्री ! शरीर नाश होने पर आत्मा भी नाश हो जाता है यह बात आपकी तत्त्वज्ञता नहीं मान सकते हैं । क्या यह अरूपी आत्मा इन्द्रियों द्वारा पकड़ी जाती है ? कभी भी नहीं अमूर्तिमान आत्मा कभी नाश नहीं होती । यदि तुम कहोगे कि इस रूपी शरीर ने अरूपी आत्मा का बन्धन कैसे कर रखा है । उत्तर-जैसे आकाश अरूपी है पर घट के आश्रित रहे हुए आकाश का बन्धन हो ही जाता है उसे घटाकाश कहेंगे । परन्तु घटका नाश होने पर आकाशका नाश कभी नहीं होता है । इसी तरह

मे शरीर का नाश होने पर आत्मा का नाश नहीं होता है यह नित्य अजर अमर है। आन्तरिक दुर्गुणों ने आत्मा को बन्धन में कर रक्खा है घट आकाशवत। और ये ही दुर्गुण आत्मा के लिये संसार का हेतु बन रहे हैं। जब ये दुर्गुण आत्मा से दूर होजायगें तब यह आत्मा परम सुख में प्राप्त होजावेगी। अब पर स्वर्ग है नर्क है मोक्ष है, सब कुछ है जो जिसकी इच्छा होगा वह प्राप्त करेगा॥ १६॥

मूल-जहा वय धम्ममजाणमाणा,
पाव पुरा कम्ममकासि मोहा।
उरुब्भमाणा परिरक्खियंता,
त नेव भुज्जोऽवि समायरामो ॥ २० ॥

छाया-यथा वय धर्ममजानानाः पाप पुरा कर्म्म अकार्ष्म मोहात्।
अवरुध्यमाना.परिरक्षमाणा., तन्नैव भूयोऽपि समाचराम.॥२०॥

अन्वयार्थ (यथा) जैसे (धम्मम्) धर्मको (अजानानाः) नहीं जानते हुए (वय) हम (पुरा) पहिले (पाप) पाप (कर्म) किया (मोहात्) मोहसे (अकार्ष्म) किया (परिरक्षमाणाः) चौतरफ से रक्षा के साथ (अवरुध्यमानाः) रोके हुवे हम (तत्) वह पाप (भूयोऽपि) फिरभी (नैव) नहीं (समाचरामः) करेंगे ॥ २० ॥

हे पिता जी ! हम धर्म नहीं जानते थे तब पहिले अज्ञान अवस्था में मोहके वश अनेक पाप किये थे। और

आपने भी कई प्रकार का झूठा ढकोसला दिखाकर अभी तक संसार में रखा कर साथ फुसला रखे थे पर अब हम उन दुष्कृत्यों को पुनरपि जान बुझ कर नहीं करेंगे । जो आप हमें समझा रहे हैं यह आपका स्वार्थ है ॥ २० ॥

मूल-अब्भाहयमि लोयम्मि, सव्वउ परिवारिए।
अमोहाहिं पडतीहिं, गिहंसि न रइ लभे ॥२१॥

छाया अभ्याहत लोके, सर्वासु परिवारिते
अमोघाभि पतन्तीभि , गृहे न रतिं लभामहे ॥२१॥

अन्वयार्थ-(लोके) लोक (अभ्याहते) पीड़ित (सर्वासु) सर्व 'दिशा' (परिवारिते) घिरा हुआ (अमोघाभिः) अविश्रामधारा (पतन्तीभिः) गिरती हुई (गृहे) घर में (रति) आनन्द (न) नहीं (लभावहे) प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

भावार्थ-हे पिता ! इस संसार में प्राणिमात्र पीड़ित और सर्व दिशाओं में परिवेष्ठित हो रहे हैं । सदैव अमोघ धारा पड़ रही है । इस लिए हम ऐसे संसार में आनन्द कैसे पा सकते हैं ॥२१॥

मूल-केण अब्भाहओ लोओ, केण वा परिवारिओ ।
का वा अमोहा वुत्ता, जाया चिंतावरो हुमि ॥२२॥

छाया-केनाभ्याहतालोकः , केन वा परिवारितः ।
का वाऽमोघाख्या, जातौ चिन्तापरो भवामि ॥२२॥

अन्वयार्थ-(जातौ) हे पुत्रों ! (केन) किस तरह

(लोकः) जन (अभ्याहतः) पीड़ित (वा) अथवा (केन) किस तरह (परिवारितः) परिवेष्टित है (वा) अथवा (का) कौनसी (अमोघा) अविश्राम धारा (उक्ता) कही (चिन्तापरः) चिन्ता ग्रसित (भवामि) होता हू ॥२२॥

भावार्थ-हे पुत्रों ! किस प्रकार इस संसार में प्राणिमात्र पीडित और वेष्टित हो रहे हैं। और कौनसी अमोघ धारा पड़ रही है। तुमारी बातें सुन कर चिन्ताग्रसित हो रहा हूं। इस का स्पष्टीकरण किये बिना मेरे चित्त को शान्ति नहीं होगा ॥२२॥

मूल-मच्चुणाऽब्भाहओ लोगो, जराए परिवारिओ।
अमोहा रयणी वुत्ता, एवं ताय वियाणह ॥२३॥

छाया-मृत्युनाभ्याहतो लोको, जरया परिवारितः।
अमोघा रजनी उक्ता, एवं तात विजानीयात् ॥२३॥

अन्वयार्थ (तात) हे पिता ! (लोकः) प्राणी (मृत्युना) मृत्यु से (अभ्याहतः) पीड़ित और (जरया) वृद्धावस्था कर के (परिवारितः) घिरे हुए हैं। (रजनी) रात 'उपलक्षण से दिन रूप' (अमोघा) अविरल धारा 'पड रही है ऐसा तत्वज्ञों ने' (उक्ता) कहा है (एवं) इस प्रकार (विजानीयात्) समझो ॥ २३ ॥

भावार्थ-हे पिता ! इस संसार में प्राणिमात्र मृत्यु के दुःख से पीड़ित और वृद्धा अवस्था कर के घिरे हुए हैं सदैव रात दिन समय रूप विश्राम रहित धारा पड रही है इस प्रकार आप अपने हृदय में प्रश्नों का उत्तर समझ लीजियेगा ॥ २३ ॥

मूल-जा जा वचइ रयणी न सा पडिनियत्तई।
अहम्म कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ ॥२४॥

छाया-या या व्रजति रजनी, न सा प्रतिनिवर्तते।
अधर्म कुर्वाणस्य, यान्ति रात्रयः ॥ २४ ॥

अन्वयार्थ-(या या) जो जो (रजनी) रात्रि (व्रजति) जाती है (सा) वह (न) नहीं (प्रतिनिवर्तते) पीछी लौट कर नहीं आती है। अधर्म। पाप को (कुर्वाणस्य) करने वाले की (हि), निश्चय (रात्रयः) रात्रि (अफला) निष्फल (यान्ति) जा रही है ॥ २४ ॥

हे पिता जी! जो जो रात्रि और दिन जा रहे हैं। वे पीछे लौट कर कभी नहीं आते हैं। ऐसा अपूर्व समय पाकर मनुष्य पाप कर रहे हैं उन के लिये यह समय निष्फलता जा रहा है ॥ २४ ॥

मूल-जा जा वचइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जन्ति राइओ॥२५॥

छाया-या या व्रजति रजनी, न सा प्रतिनिवर्तते।
धर्मञ्च कुर्वतस्तस्य सफला यान्ति रात्रयः ॥ २५ ॥

(या या) जो जो (रजनी) रात्री (व्रजति) जाती है (सा) वह (न) नहीं (प्रतिनिवर्तते) पीछी लौट कर आती है 'ऐसा समझ कर' (धर्मं) धर्म को (च) पद पूर्णार्थ (कुर्वतस्तस्य) करने वाले की (रात्रयः) रात्रि (सफला) सफल (यान्ति) जा रही है ॥ २५ ॥

। चित्र परिचय के लिये, यन्त्र क्रिया नहीं है ।



ग्वालों लड़के साधुओं को देखकर भयभीत होते हुए गाँव में जगल की ओर भागे आ रहे हैं। आगे वे दोनों वट वृक्ष पर चढ़ कर पत्ते की आड़ में छिप रहे हैं। मुनि आहार पानी करने को बैठे त्यों ही दोनों लड़के वट से उतर कर नमस्कार कर रहे हैं।

भावार्थ-हे पिता श्री ! रात दिन रूप जो अपूर्व समय जा रहा है, वह लौट कर कभी भी पीछा आनेका नहीं है। ऐसा समझ कर ज्ञानी जन धार्मिक कार्यों में समय बिता रहे हैं उन का जन्म व समय सार्थक है । अतः एव ऐसा अपूर्व समय जान कर अब हम हमारा समय निष्फल नहीं जाने दें। आप हमें धर्म करने से न रोकें ॥ २५ ॥

मूल-एगओ संवसित्ता णं दुहओ सम्मत्तसंजुया ।
पच्छा जाया गमिस्सामो भिक्खमाणा कुले कुले ॥२६॥

छाया-एकतः समुष्य द्वये सम्यक्त्वसंयुताः ।
पश्चाज्जातौ गमिष्यामो, भिक्षमाणा कुले कुले ॥२६॥

अन्वयार्थ-(जातौ) हे पुत्रों ! (द्वये) तुम दोनों हम दोनों (एकतः) एक जगह (समुष्य) निवास कर (सम्यक्त्वसंयुताः) सम्यक्त्व सहित होवें पश्चात्) फिर (कुले कुले) घर घर में (भिक्षमाणाः) भिक्षा करते हुए (गमिष्यामः) पर्यटन करेंगे ॥ २६ ॥

भावार्थ-हे पुत्रों ! तुम दोनों भ्राताओं और हम दोनों तुम्हारे मात पिताओं एवं चारों ही अभी हाल एक ही स्थान में सम्यक्त्व सहित गृहस्थाश्रम में निवास कर यथा शक्ति अपने धर्मोपार्जन करें । फिर वृद्धावस्था आने पर मुनिवृत्ति ग्रहण कर उत्तम कुलोंमें निर्दोष आहार पानी की भिक्षा करते हुए देशाटन करेंगे ॥ २६ ॥

मूल-जस्सऽत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वाऽत्थि पलायणं ।
जो जाणइ न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥२७॥

इस प्रकार पिता पुत्र के परस्पर वार्तालाप होने पर पिताने जान लिया कि ये अब संसार में रहने के नहीं हैं। जितने भी मैंने इनको रोकने के प्रयत्न किये वे सब योंही गये। जब ये दोनों पुत्र संसार परित्याग कर रहे हैं तो मेरा संसार में रहना अयोग्य है। ऐसा विचार कर भृगु पुरोहित अपनी प्रियपत्नि से यों कहने लगा॥

मूल-पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो,
वासिट्ठि भिक्खायरियाइ कालो।
सहाहि रुक्खो लहई समाहिं,
छिन्नाहिं साहाहि तमेव खाणु ॥ २९ ॥

छाया प्रहीणपुत्रस्य खलु नास्ति वासो,
वाशिष्ठि भिक्षाचर्याया काल।
शाखाभिर्वृक्षो लभते समाधिश्छिन्नाभि
शाखाभि: स एव स्थाणु ॥ २९ ॥

अन्वयार्थ-(वाशिष्ठि) हे वशिष्ठ गोत्रवाली (प्रहीणपुत्रस्य) बिना पुत्र वाले का (खलु) निश्चय (वास:) 'संसार में' निवास करना 'योग्य' (न) नहीं (अस्ति) है 'उसका तो' (भिक्षाचर्याया:) भिक्षावृत्ति का (काल) समय है 'जैसे' (वृक्ष:) पेड़ (शाखाभि:) शाखाओं करके (समाधिं) आनन्द को (लभते) प्राप्त होता है (शाखाभि:) शाखाओं करके

(छिन्नाभिः) रहित (स एव) नहीं वृक्ष (स्थाणुः) स्तम्भ ' के समान है ' ॥२६॥

भावार्थ-हे वशिष्ठ गोत्र में उत्पन्न होने वाली प्राणवल्लभा ! दोनों पुत्रों का मैंने बहुत समझाया पर वे मेरे कथन को नहीं मानते हुए ममत्व का परित्याग कर रहे हैं। इस लिये बिना पुत्र मेरा भी संसार में रहना योग्य नहीं है । क्योंकि अभोगी दोनों पुत्र तो दीक्षा ले रहे हैं और मैं फिर भी विषयों की लालसा में बैठा रहूं यह कभी होने का नहीं मेरा भी भिक्षावृत्ति करने का समय है। जैसे वृक्ष शाखाओं से आनन्द को प्राप्त होता है। और वही वृक्ष शाखा करके रहित सुशोभित नहीं होता हुआ थम्बे के समान दिखाई देता है ॥ २६ ॥

मूल-पक्खाविहूणो व जहेव पक्खी,
भिचाविहूणो व रणे नरिन्दो ।
विवन्नसारो वणिउव्व पोए,
पहीणपुत्तोमि तहा अहंपि ॥ ३० ॥

छाया-पक्षविहीना वा यथैव पक्षी,
भृत्यविहीनो वा रणे नरेन्द्रः ।
विपन्नसारो वणिग् वा पोते,
प्रहीणपुत्रोऽस्मि तथाऽहमपि ॥३०॥

अन्वयार्थ-(यथैव) जैसे (पक्षविहीन.) पर बिना (पक्षी) पक्षी जानवर (वा) अथवा (रणे) संग्राम में

लाभमलाभञ्च सुखञ्च दुःख,
सत्यच्यमाण श्चरिष्यामि मौनम् ॥ ३२ ॥

अन्वयार्थ (भोगिनि) हे भोगेच्छुक (रसा) भोगों को (मुक्ता) भोग लिये 'इन को नहीं छोड़ेंगे तो' (वयः) अवस्था (न) मुझ को (जहाति) त्याग जायगी (जीवितार्थे) स्वर्ग में विशेष जिनके लिये (भोगान्) भोगों को (न) नहीं (प्रजहामि) त्यागता हूं (लाभ) प्राप्ति (च) और (अलाभम्) अप्राप्ति (च) और (सुखम्) सुख (दुःखम्) दुःख को (सत्यच्यमाण) समभाव से देखता हुआ (मौनम्) साधुवृत्ति को (चरिष्यामि) प्राप्त करूंगा ॥३२॥

भावार्थ-हे भोगेच्छुका प्राणप्रिये! संसार के पौद्गलिक सुखों का अनुभव अच्छी तरह से मैं ने कर लिया है। यदि मैं इन भोगों को नहीं छोड़ूंगा तो यौवन अवस्था मुझ को परित्याग कर जायगा। इस लिये पहले ही से भोगों का परित्याग करना श्रेष्ठ है। दांत गिरने पर इक्षु चूसने का त्याग करना अज्ञानता है। और यह भी मन में मत समझना कि उपलब्ध भोगोपभोग से अधिक भोगों की प्राप्ति के लिये संसार छोड़ रहा हूं मैं तो केवल आत्मिक सुखों के लिये ही संसार परित्याग कर रहा हूं। मुझे स्वर्गादि की प्राप्ति अप्राप्ति पौद्गलिक सुख दुःख से कोई प्रयोजन नहीं है। सम भाव से देखता हुआ साधुवृत्ति प्राप्त करूंगा ॥ ३२ ॥

मूल-मा हू तुम सोयरियाण सम्भरे,

जुण्णो व हंसो पडिसोयगामी ।
भुंजाहि भोगाइ मए समाणं,
दुक्खं खु भिक्खायरिया विहारो ॥३३॥

छाया—मा खलु त्वं सौदर्याणामस्मार्षी,
जार्णं इव हंसः प्रतिस्रोतोगामी ।
भुंक्ष्व भोगान् मया समं,
दुःखं खलु भिक्षाचर्या विहारो ॥ ३३ ॥

अन्वयार्थ—(प्रतिस्रोतोगामी) प्रतिकूल स्रोतको जानेवाला (जीर्ण) पुराने (हंस) हंस (एव) जैसे (त्वम्) तुम (सौदर्याणाम्) एक उदरसे उत्पन्न होने वाले भ्राताओं का (मा) कहीं (खलु) निश्चय (अस्मार्षी) स्मरण करोगे ' इस लिये (मया) मेरे (समं) साथ (भोगान्) भोगों का (भुंक्ष्व) भोगो (भिक्षाचर्याः) भिक्षा वृत्तिका (विहारः) गमन (दुःखम्) दुःखमयी (खलु) निश्चय है ॥ ३३ ॥

भावार्थ—हे प्राणेश्वर ! दीक्षा लेने के बाद कुटुम्बियों के भोगों की तरफ तुमारा कहीं ध्यान तो आकर्षित न होजाय ! जैसे नदी के किनारे पर हंसों के टोलों में से एक वृद्ध हंस अपनी सहचारिणी व कुटुम्बियों की बात पर तनिक भी ध्यान

नहीं इधर पहले किनारे हाने के लिए नहीं के प्रतिकूल प्रवाह में पड़गया । जब मध्यभाग में उसे कष्ट पहुँचा तब उसने अपनी सहचारिणी व कुटुम्बियों को याद किये कि मेरी सहचारिणी ने मुझे बहुत रोका था पर मैं ने नहीं माना । ऐसे ही हे पतिराज तुम भी दीक्षा रूप प्रवाह में याद करते हुए फिर पश्चाताप करोगे कि अरे मेरी स्त्री ने मुझे संयम लेते बहुत रोका था । परन्तु मैंने उसका कथन नहीं माना । ऐसी अवस्था में वहाँ आप न घरके रहोगे, न घाट के । साधुवृत्ति सहज नहीं है महान कठिन है । इस से तो यह अच्छा है कि संसार में रहकर सुख भोगो । इस के सिवाय और क्या है ॥ ३३ ॥

मूल—जहा य भोई तणुयं भुयंगो,
निम्मोयणिं हिच्च पलेइ मुत्तो ।
एमेए जाया पयहंति भोए,
तेऽहं कहं नाणुगमिस्समेको ॥ ३४ ॥

छाया—यथा च भोगिनि ! तनुजां भुजङ्गमो ।
निर्मोचनीं हित्वा पर्येति मुक्तः ।
एवमेतौ जातौ प्रजहीतो भोगान् ।
तदहं कथं नानुगमिष्याम्येकः ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थ—(भोगिनि) हे भोगेच्छुका ! (च) और (यथा) जैसे (भुजगमः) सर्प (तनुजाम्) शरीर से उत्पन्न होनवाली (निर्मोचनीं) कंचुली को (हित्वा)

छोड़कर (मुक्तः) मुक्त होने पर (पर्येति) भागजाता है (एवम्) इस प्रकार (एतौ) ये (ते) तुम्हारे (जातौ) पुत्र (भोगान्) भोगों को (प्रजहीतः) त्यागन कर दिये है (एकः) एकेला (अहं) मैं (कथं) कैसे (न) नहीं (अनुगमिष्यामि) साथ जाऊँगा ॥ ३८ ॥

भावार्थ—हे भोगेच्छुक प्रिय पति ! जैसे सर्प, तासे उत्पन्न होनेवाली कंचुकाको छोड़कर भाग जाता है । पुनः उसी कंचुकाको लेना तो दूर रहा पर उसकी तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखता है । ऐसे ही तेरे दोनों पुत्र शरीर में उत्पन्न होने वाले भोगोपभोगों के सुखों का परित्याग कर साधु बनने को जा रहे है । तो भी मैं एकला उनके साथ सा धुवृत्ति ग्रहण करने को नहीं जाऊँगा क्या ? ॥ ३४ ॥

मूल—छिंदितु जाल अबल व रोहिया,
मच्छा जहा कामगुणे पहाय ।
धोरेयसीला तवसा उदारा,
धीराहु भिक्खायरियं चरन्ति ॥ ३५ ॥

छाया—छित्त्वा जालमबलमिव रोहिता,
मत्स्या यथा कामगुणान् प्रहाय ।
धौरेयशीला तपसा उदारा,
धीरा यस्मात् भिक्षाचर्यां चरन्ति ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थ—(यथा) जैसे (रोहिता) रोहित जाति का (मत्स्या) मच्छ (अबलम्) जीर्ण (जालम्) जालको (छित्वा) नाश करके 'स्वेच्छा से विचरता है' (इव) वैसे ही (धौरेयशीला) प्रबल है धर्म क्रिया में स्वभाव जिनका (तपसा) तपस्या (उदारा) प्रधान (धीरा) बुद्धिमान (कामगुणान्) कामभोगों को (प्रहाय) त्याग कर (यस्मात्) 'मोक्ष' जाने के लिये (भिक्षा-चर्यां) भिक्षा वृत्तिको (चरन्ति) प्राप्त करते हैं ॥ ३५ ॥

भावार्थ—हे प्रियपत्नि ! जैसे रोहित जातिका मच्छ जीर्ण जाल को अपनी तीक्ष्ण पूंछ से काटकर जल में स्वेच्छा से विचरता है। ऐसे ही प्रधान तप के धारी क्रिया में उत्कृष्ट भाव है जिनके वैसे वे भोग रूप जाल को नष्ट कर संयम मार्ग को जा रहे हैं। ३५॥

मूल—नहेव कुंचा समइक्कमंता,
तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा।
पलेंति पुत्ता य पई य मज्झं,
ते हं कहं नाणुगमिस्समेक्का ॥ ३६ ॥

छाया—नभसीव क्रौंचा समतिक्रामन्त,
स्ततानि जालानि दलयित्वा हंसाः।
परियन्ति पुत्रौ च पतिश्च मम,
तानहं कथं नानुगमिष्याम्येका ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थ—(नभसि) आकाश में (क्रौंचाः) क्रौंच पक्षी (इव) जैसे (समतिक्रामन्त) एक देश को उलंघन करजाते है (च) और (हंसाः) हंस पक्षी (ततानि) विस्तीर्ण (जालानि) जालको (दलयित्वा) काट कर 'स्वेच्छा से विचरते हैं ऐसे ही' (पुत्रौ) दोनों पुत्र (च) और (मम) मेरे (पतिः) प्राणनाथ (तान्) उन भोगों को त्यागकर सयम लेने का' (परियन्ति) जा रहे है (एका) एकेली (कथ) कैसे (न) नहीं (अनुगमिष्यामि) साथ जाऊँगा ॥ ३६ ॥

भावार्थ—हे प्राणपते ! आपका सद्बोध मेरे कलेजे का पार कर गया है । अहा हा खूबही अच्छा दृष्टान्त दिया। जैसे क्रौंच पक्षी एक देश का उलघन कर दूसर देश को चला जाता है । हंस लम्बी चौडी जालको काटकर स्वच्छा स विचरता है । एस ही दोनो पुत्र और आप मोह माया रूप जालका काटकर सयम मार्गका प्राप्त करने के लिये जा रह हैं तब मै एकेली क्या सयम मागको प्राप्त करने क लिये साथ नहीं आऊँगा ॥ ३६ ॥

मूल—पुरोहिय त ससुय सदार,
सोचाभिनिक्खम्म पहाय भोए।
कुडुबसार विउलुत्तम त,
राय अभिक्ख समुवाय देवी ॥ ३७

छाया—पुरोहितं तं ससुतं सदारं,
श्रुत्वाऽभिनिष्क्रम्य प्रहाय भोगान्।
कुटुम्बसारं विपुलोत्तमं तं,
राजानमभीक्ष्णं समुवाच देवी ॥ ३७ ॥

अन्वयार्थ—(ससुतम्) पुत्र सहित (सदारम्) स्त्री सहित (तम्) वह (पुरोहितम्) पुरोहित (भोगान्) भोगों को (प्रहाय) परित्याग कर (अभिनिष्क्रम्य संसार से निकलते हैं 'ऐसा' (श्रुत्वा) सुनकर (विपुलोत्तमम्) प्रचुर प्रधान (कुटुम्बसार) धन धान्यादि 'ग्रहण करने वाले' (तम) उस (राजानम्) राजा को (देवी) पटरानी (अभीक्ष्णम्) बार बार (समुवाच) कहने लगी ॥ ७॥

भावार्थ—पुरोहित और उस की स्त्री ये दोनों पुत्रों के वैराग्य मयी वाक्यों को श्रवण कर पुरोहित व स्त्री और दोनों पुत्र चारों ही व्यक्ति भोगों को परित्याग कर रहे हैं। और क्रोड़ों रुपयों की सम्पत्ति को ज्यों का त्यों घर पर छोड़ कर संयम मार्ग का ग्रहण करने के लिये जा रहे हैं। यह खबर सुनते ही राजा उनकी सब सम्पत्ति राज्य भण्डार में डलवाने का अनुचरों को हुक्म दे दिया तदनु यह सूचना दासों द्वारा रानी को मालूम होते ही अपने प्राण पति नरेश के पास आ कर यों कहने लगी ॥ ३७॥

मूल—वन्तासी पुरिसो राय, न सो होइ पसंसिओ।
माहणेण परिचत्तं, धणं आदाउमिच्छसि ॥ ३८॥

छाया—वान्ताशी पुरुषो राजन् न सो भवति प्रशंसितः ।
ब्राह्मणेन परित्यक्तं धनमादातुमिच्छसि ॥३८॥

अन्वयार्थ—[राजन्] हे राजन् [वान्ताशी] वमन किये हुवे पदार्थ को खाने वाला [पुरुषः] मनुष्य [सः] वह [प्रशंसितः] प्रशंसा पात्र [न] नहीं [भवति] होता है [ब्राह्मणेन] ब्राह्मणने [परित्यक्तं] त्यागा हुआ [धनम्] धन [आदातुम्] लेने को [इच्छसि] इच्छा करते हो ॥ ३८ ॥

भावार्थ—हे प्राणनाथ नृपते ! जैसे किसी पुरुष की उल्टी हुई उसी ही उल्टी को कुत्ते काग के सिवाय वही पुरुष पुनः भक्षण करना चाहे तो वह क्या प्रशंसनीय हो सकता है ! कभी भी नहीं। ऐसे ही हे नाथ आप जो धन ब्राह्मण का [illegible] कर चुके। उसी को आप लेना स्वीकार कर रहे हैं। यह कहां तक योग्य और उचित है। आप स्वयं हृदय पर हाथ धर कर इस बात को कुछ देर के लिये सोचें ॥ ३८ ॥

मूल—सव्वं जगं जइ तुहं, सव्वं वावि धणं भवे ।
सव्वंपि ते अपज्जत्तं, नेव ताणाय तं तव ॥३९॥

छाया—सर्वं जगद्यदि तव, सर्वं वापि धनं भवेत् ।
सर्वमपि तदपर्याप्तं नैव त्राणाय तत्तव ॥३९॥

अन्वयार्थ—[यदि सर्वम्] यदि सर्व [जगत्] लोक [चापि] और भी [सर्वम्] सर्व [धनम्] धन [तव]

तुम्हारे [भवेत्] हो जावे 'तदपि' [तव] तुम्हारे [सर्व मपि] सर्व भी [अपर्याप्तम्] अपूर्ण है [तत्] वह 'सब जगत् व धन' [तव] तुम्हारे [त्राणाय] रक्षा के लिये [नैव] नहीं है ॥ ३९ ॥

भावार्थ–हे प्राणेश्वर ! यदि आप को सारा जगत् का राज्य मिल जावे और पृथ्वी भर का सब धन हस्तगत हो जाय। तदपि आप की इच्छा कभी भी परिपूर्ण नहीं होगी । ज्यों ज्यों धन व राज्य बढ़ता जायगा त्यों त्यों इच्छा बढ़ती हो जायगी फिर यही राज्य और धन अन्त समय में कुछ भी काम आने वाले नहीं हैं। और न वे यमराज की दी हुई यातना में रक्षा कर सकेंगे ॥३९॥

मूल—मरिहिसि राय जया तया वा,
मणोरमे कामगुणे पहाय ।
एक्को हु धम्मो नरदेव ताणं,
न विज्जइ अन्नमिहेह किंचि ॥४०॥

छाया—मरिष्यसि राजन् यदा तदा वा,
मनोरमान् कामगुणान् विहाय ।
एक एव धर्मो नरदेव त्राणं,
न विद्यतेऽन्यदिहेह किञ्चित् ॥ ४० ॥

अन्वयार्थ—[राजन्] हे नरेश [यदा तदा वा] जब तब [मनोरमान्] मनोहर [कामगुणान्] कामभोगों को [विहाय] छोड़ कर [मरिष्यसि] मरोगे [नरदेव]



दोनों लड़कों को ढूंढने के लिए भृगु पुरोहित और उनकी स्त्री दोनों गाँवसे निकल कर जंगल की ओर जा रहे हैं। और लड़के दोनों सामने आरहे हैं।

हे मनुष्यों के देव [एक एव] एक ही [धर्म] धर्म [त्राणम्] शरण भूत 'होगा' [अन्यत्] दूसरा [इहेह] यहाँ पर [किञ्चित्] कोई भी [न] नहीं [विद्यते] है ॥४०॥

भावार्थ हे राजन् ! इन प्रधान काम भोगों को छोड़ कर किसी एक समय में आखिर मरना पड़ेगा अमर हो कर कोई नहीं आया है । देखिये कैसे २ चक्रवर्ति राजा जो कि मरना जानते ही न थे वे भी दुनिया से चल बसे, सब उन के ऐश आराम की चीजें यहीं धरी रह गई हैं। पर भव में माता, पिता भगिनी, औरत पुत्र, धन, राज, कोट, किला कोई भी चीज शरणभूत नहीं हो सकेंगे। केवल एक धर्म ही अवश्य आप की यातना में हाथ बटायेगा ॥ ४० ॥

राजा अपनी प्रियपत्नि के मार्मिक वचनों को सुनते ही चमक कर बोला रानी ठर हुउ ठेर, बोलने में इतनी जल्दी मत कर । क्या तेरा चित्त व्याकुल तो नहीं हो गया है। राज्य में धन आता है वह सब देना ही है । ये तेरे सब रत्न जड़ित चन्द्रहार आदि आभूषण इसी धन के बने हुए हैं । जैसा तू मुझे उपदेश कर रही है तो क्या तू अमर हो कर आई है यह तो एक यह बात हुई जैसे किसी कवि ने कहा कि 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे " हे राणी पहिले तो राज्य छोड़ साध्वी बन जा फिर मुझे उपदेश करना । इस प्रकार अपने प्राणेश्वर के वचन सुनते ही राजा से राणी यों बोली ॥

मूल—नाह रमे पक्खिणि पंजरे वा,
संताणछिन्ना चरिस्सामि मोण ।

अकिंचणा उज्जुकडा निरामिसा,
परिग्गहारम्भनियत्तदोसा ॥ ४१ ॥

छाया—नाहं रमे पक्षिणि पञ्जरे इव,
छिन्नसन्ताना चरिष्यामि मौनम् ।
अकिंचना ऋजुकृता निरामिषा,
परिग्रहारम्भदोषनिवृत्ता ॥ ४१ ॥

अन्वयार्थ—[पञ्जरे] पिंजरे में [पक्षिणीव] पक्षिणी के जैसे [अहम्] मैं [न] नहीं [रमे] आनन्द पाती हूँ 'अत एव' [अकिंचना] द्रव्य रहित [ऋजुकृता] सरल [निरामिषा] विषय रहित [आरम्भपरिग्रहदोषनिवृत्ता] आरम्भ परिग्रह दोषों से विरक्त हो [मौनम्] साधुवृत्ति व्रत [चरिष्यामि] अङ्गीकार करूंगी ॥ ४१ ॥

भावार्थ—हे प्राणनाथ ! जैसे पक्षिणी पिंजर में खान पान आदि सब सुविधाएं होते हुए भी दुःख अनुभव करता है। ऐसे ही इस राज्य और भव रूप पिंजरे में मैं भी आनन्द नहीं पा रही हूँ। यदि आप मुझे आज्ञा देदें तो मैं स्नेह रूप सन्तति को छोड़ कर विषय वासना से मुँह मोड़ दूँ। सब ये हीरे पन्ने के मंडित गहने शरीर से उतार कर सरल स्वभाविनी बनूँ। और आरम्भ परिग्रह से उत्पन्न होने वाले दोषों का परित्याग कर आर्यिका अर्थात् साध्वी बनूंगी ॥ ४ ॥

मूल—दवग्गिणा जहा रण्णे,

डज्झमाणेसु जंतुसु ।
अन्ने सत्ता पमोयति,
रागदोसवस गया ॥ ४२ ॥

छाया—दवाग्निना यथाऽरण्ये, दह्यमानेषु जन्तुषु ।
अन्ये सत्त्वाः प्रमोदयन्त, रागद्वेषवशगताः ॥४२॥

अन्वयार्थ—[यथा] जैसे [दवाग्निना] दावानल कर के [जंतुषु] प्राणि [दह्यमानेषु] जलते हुवे [अरण्येषु] वन में [रागद्वेषवशगता] रागद्वेष के वशीभूत हुए [अन्ये] दूसरे [सत्त्वाः] प्राणि [प्रमोदयन्ते] आनन्दित होते हैं ॥ ४२ ॥

भावार्थ—हे नाथ! जैसे किसी एक जंगल में दावानल कर के हिरन खरगोश आदि मूक प्राणी जल रहे थे, उस समय दावानल के निकटवर्ति दूसरे हिरन खरगोश आदि जानवर जिन के समीप अभी तक वहाँ अग्नि पहुँची नहीं वे सभी प्राणी उस घटना को देख कर बड़े खुशी मनाते हैं। पर वे मूढ यों नहीं जानते हैं कि जो घटना वहाँ हो रही है वही घटना हमारे पर भी क्षण मात्र में घटने वाली है ॥ ४२ ॥

मूल—एवमेव वयं मूढा,
कामभोगेसु मुच्छिया ।
डज्झमाणं न बुज्झामो,
रागदोसग्गिणा जगं ॥ ४३ ॥

छाया—एवमेव वयं मूढा, कामभोगेषु मूर्च्छिताः ।
दह्यमानं न बुध्यामहे, रागद्वेषाग्निना जगत् ॥४३॥

अन्वयार्थ—(एवमेव) इसी तरह से (वयम्) अपने भी (मूढा) मूढ हो रहे हैं 'जो कि' (कामभोगेषु) कामभोगों में (मूर्च्छिता) मूर्च्छित होते हुए (रागद्वेषाग्निना राग द्वेष रूप अग्नि कर के (दह्यमान) जलते हुए (जगत्) संसार को न नहीं (बुध्यामहे) जानते हैं ॥ ४३ ॥

भावार्थ—हे प्राणेश्वर ! जैसे वे प्राणी औरों को जलते हुए देख कर आनन्दित होते हैं । इसी प्रकार अपने भी वैसे मूढ हैं जो कि काम भोगों में मूर्च्छित हो कर राग द्वेष रूप अग्नि कर के सारे जगत को जलते हुए देख कर अपने ज्ञान प्राप्त नहीं करते हैं । जैसे ये मर रहे हैं और उनके लिये जो घटना हो रही है वह एक रोज अपने पर भी होगी ॥ ४३ ॥

मूल—भोगे भोच्चा वमित्ता य,
लहुभूयविहारिणो ।
आमोयमाणा गच्छंति,
दिया कामकमा इव ॥ ४४ ॥

छाया—भोगान् भुक्त्वा वान्त्वा च,
लघुभूतविहारिणः ।
आमोदमाना गच्छन्ति,
द्विजा कामक्रमा इव ॥ ४४ ॥

अन्वयार्थ--(भोगान्) भोगों को (भुक्त्वा) भोग कर (च) और 'उत्तकाल में'(वान्त्वा) त्याग कर (लघुभूतविहारिणः) हलका विहार (कामक्रमाः) यथेच्छा पूर्वक (द्विजा इव) पक्षि के जैसे यद्वा ब्राह्मण के जैसे (आमोदमानाः) आनन्दित होते हुए (गच्छन्ति) विचरते हैं ॥ ४४ ॥

भावार्थ-हे प्राणेश्वर ! अपन संसार में सब ऐश आराम कर चुके हैं कोई भी बात की कमी नहीं रही है । अत एव अब इन भोगों को परित्याग कर द्रव्य से भाव से हलके वायु के समान यथेच्छा पूर्वक आनन्दित होते हुये संयम मार्ग में विचरें । जैसे पक्षि यद्वा भृगुपुरोहित और उसकी स्त्री व दोनों पुत्र संसार का परित्याग कर संयम मार्ग में विचरते हैं ॥ ४४ ॥

मूल—इमे य बद्धा फंदंति,
मम हत्थऽज्जमागया ।
वयं च सत्ता कामेसु,
भविस्सामो जहा इमे ॥ ४५ ॥

छाया—इमे च बद्धाः स्पन्दते,
मम हस्तमार्य्य आगताः ।
वयञ्च सक्ताः कामेषु,
भविष्यामो यथेमे ॥ ४५ ॥

अन्वयार्थ—(आर्य्य) हे आर्य (बद्धा) सुरक्षित (इमे) ये भोग (मम) मेरे (च) और 'उपलक्षणसे तुम्हारे' (हस्तम्)

भावार्थ-हे नाथ ! गृध पक्षि के समान काम भोगों को समार वर्धक जानकर परित्याग कर दें। जैसे सर्प गरुड़ से भयभीत होता हुआ उसके पास से धैसा चपल हो जाता है। ऐसे ही आपन भी इह काम भोगों से चपल हो कर संयम स्थान में विचरे ॥४७॥

मूल--नागोव्व बंधणं छित्ता, अप्पणो वसहिं वए।
एय पत्थ महाराय, उसुयारित्ति मे सुय ॥४८॥

छाया—नाग इव बन्धनञ्छित्वात्मनो वसतिं व्रजेत्।
एतत्पथ्य महाराज, इषुकार इति मे श्रुतम् ॥ ४८ ॥

अन्वयार्थ--(इषुकार) इषुकार नाम के (मह--
महाराज (नाग इव) हाथी के जैसे (बंधनम्
(छित्वा) तोड़ कर (आत्मन) आ मा --
निवास स्थान को (व्रजेत्) जावे (एतत्)
हितकारी 'मार्ग को' (इति मे) मैं न
किया था ॥ ४८ ॥

भावार्थ-हे इषुकार नाम से सुशोभित
अपना मजबूत बंधन भी जैसे तैसे ..
चला जाता है। ऐसे ही आत्मा भी ज म
कर्म रूप बंधन को संयम रूप फंदे स
स्थान पर पहुँच जाती है। उपरोक्त मार्ग
किया है इस लिए आपन भी ज म ..

बन्धन को तोड़ कर मोक्ष स्थान को प्राप्त करें। इस प्रकार वैराग्य भरी बातें राणी की सुन कर राजा को भी वैराग्य हो गया ॥४८॥

मूल—चइत्ता विउल रज्जं,
कामभोगे य दुचए।
निव्विसया निरामिसा,
निन्नेहा निप्परिग्गहा॥ ४६ ॥

छाया—त्यक्त्वा विपुल राज्य, कामभोगाश्च दुस्त्यजान्।
निर्विषयौ निरामिषौ, निःस्नेहौ निष्परिग्रहौ ॥ ४६ ॥

अन्वयार्थ—(विपुलम्) लम्बा चौड़ा (राज्यम्) राज्यको (च) और (दुस्त्यजान्) त्यागना कठिन ऐसे (कामभोगान्) कामभोगों को (त्यक्त्वा) छोड़कर (निर्विषयौ) विषयवासनादि रूप (निरामिषौ) आमिष करके रहित (निःस्नेहौ) स्नेह (निष्परिग्रहौ) परिग्रह रहित ' होवे ' ४६ ॥

भावार्थ-राजा और रानी दोनों लम्बी चौड़ी सीमावाला राज्य और दुस्त्याज्य काम भोगों को छोड़कर विषयवासना, धन धान्य रूप आमिष, स्नेह रूप प्रतिब ध आरम्भ परिग्रह आदि से रहित हुए ॥ ४६ ॥

मूल—सम्म धम्म वियाणित्ता,
चेचा कामगुणे वरे।
तव पगिज्झाहक्खायं,
घोर घोरपरक्कमा ॥ ५० ॥

भावार्थ-हे नाथ ! गृध पक्षि के समान काम भोगों को ससार वर्धक जानकर परित्याग कर दें। जैसे सर्प गरुड़ से भयभीत होता हुआ उसके पास से कैसा चपत हो जाता है। ऐसे ही आपन भी इन काम भोगों से चपत हो कर संयम स्थान में विचरे ॥४७॥

मूल--नागोऽव बंधणं छित्ता, अप्पणो वसहिं वए।
एयं पत्थं महाराय, उसुयारित्ति मे सुयं ॥४८॥

छाया—नाग इव बन्धनञ्छित्वात्मनो वसतिं व्रजेत्।
एतत्पथ्यं महाराज, इषुकार इति मे श्रुतम् ॥ ४८ ॥

अन्वयार्थ--(इषुकार) इषुकार नाम के (महाराज) हे महाराज (नाग इव) हाथी के जैसे (बंधनम्) बन्धन को (छित्वा) तोड़ कर (आत्मनः) आत्मा के (वसतिम्) निवास स्थान को (व्रजेत्) जावे (एतत्) यह (पथ्यम्) हितकारी 'मार्ग को' (इति मे) मैं ने (श्रुतम्) श्रवण किया था ॥ ४८ ॥

भावार्थ-हे इषुकार नाम से सुशोभित महाराज ! जैसे हाथी अपना मजबूत बंधन भी जैसे तैसे तोड़ कर वापस अटवी को चला जाता है। ऐसे ही आत्मा भी जन्म जन्मान्तर में किये हुए कर्म रूप बंधन को संयम रूप करके से तोड़ कर शुद्ध आत्मा के स्थान पर पहुँच जाती है। उपरोक्त मार्ग मैं ने सुगुरू द्वारा श्रवण किया है इस लिये आपन भी जन्म जन्मान्तर में किये हुए कर्म

बन्धन को तोड़ कर मोक्ष स्थान को प्राप्त करें। इस प्रकार वैराग्य भरी बातें राणी की सुन कर राजा को भी वैराग्य हो गया।॥४८॥

मूल—चइत्ता विउल रज्जं,
कामभोगे य दुच्चए।
निव्विसया निरामिसा,
निन्नेहा निप्परिग्गहा॥ ४६ ॥

छाया—त्यक्त्वा विपुल राज्यं, कामभोगाश्च दुस्त्यजान्।
निर्विषयौ निरामिषौ, निःस्नेहौ निष्परिग्रहौ ॥ ४६ ॥

अन्वयार्थ—(विपुलम्) लम्बा चौड़ा (राज्यम्) राज्यको (च) और (दुस्त्यजान्) त्यागना कठिन ऐसे (कामभोगान्) कामभोगों को (त्यक्त्वा) छोड़कर (निर्विषयौ) विषयवासनादि रूप (निरामिषौ) आमिष करके रहित (निःस्नेहौ) स्नेह (निष्परिग्रहौ) परिग्रह रहित 'होवे' ४६ ॥

भावार्थ-राजा और रानी दोनों लम्बी चौड़ी सीमावाला राज्य और दुस्त्याज्य काम भोगों को छोड़कर विषयवासना, धन धान्य रूप आमिष, स्नेह रूप प्रतिब ध आरम्भ परिग्रह आदि से रहित हुए ॥ ४६ ॥

मूल—सम्मं धम्मं वियाणित्ता,
चेचा कामगुणे वरे।
तवं पगिज्झाऽहक्खायं,
घोरं घोरपरक्कमा ॥ ५० ॥

भावार्थ-हे नाथ ! गृध पक्षि के समान काम
पूर्वक जानकर परित्याग कर दें। जैसे मग ग
होता हुआ उसके पास से कैसा चपत हो जाता
अपन भी इन काम भोगों से चपत हो कर स
निग्रह ॥ ४७ ॥

मूल--नागोव्व बंधणं छित्ता, अप्पणो वस
एयं पत्थं महारायं, उसुयारित्ति मे सु

छाया—नाग इव बन्धनं छित्वाऽऽत्मना वसतिं व्रजेत्।
एतत्पथ्यं महाराज, इषुकार इति मे श्रुतम् ॥

अन्वयार्थ--(इषुकार) इषुकार नाम के (महारा
महाराज (नाग इव) हाथी के जैसे (बन्धनम्) बन्ध
(छित्वा) तोड़ कर (आत्मन) आत्मा के (वसति
निवास स्थान को (व्रजेत्) जावे (एतत) यह (पथ्य
हितकारी 'मार्ग का' (इति मे) मैं ने (श्रुतम्) श्रव
किया था ॥ ४८ ॥

भावार्थ-हे इषुकार नाम से सुशोभित महाराज ! जैसे हाथी
अपना मजबूत बंधन भी जैसे तैसे तोड़ कर अपनी अटवी को
चला जाता है। ऐसे ही आत्मा भी जन्म जन्मान्तर में किये हुए
कर्म रूप बंधन को संयम रूप करके से तोड़ कर शुद्ध आत्मा के
स्थान पर पहुँच जाती है। उपरोक्त मार्ग मैं ने सुगुरु द्वारा श्रवण
किया है इस लिए अपन भी जन्म जन्मान्तर में किये हुए कर्म

य-धन को तोड़ कर मोक्ष स्थान को प्राप्त करें। इस प्रकार वैराग्य भरी बातें राणी की सुन कर राजा को भी वैराग्य हो गया ॥४८॥

मूल—चइत्ता विउल रज्ज,
कामभोगे य दुच्चए।
निव्विसया निरामिसा,
निन्नेहा निप्परिग्गहा ॥ ४६ ॥

छाया—त्यक्त्वा विपुल राज्यं, कामभोगांश्च दुस्त्यजान्।
निर्विषयौ निरामिषौ, निःस्नेहौ निष्परिग्रहौ ॥ ४६ ॥

अन्वयार्थ—(विपुलम्) लम्बा चौड़ा (राज्यम्) राज्यको (च) और (दुस्त्यजान्) त्यागना कठिन ऐसे (कामभोगान्) कामभोगों को (त्यक्त्वा) छोड़कर (निर्विषयौ) विषयवासनादि रूप (निरामिषौ) आमिष करके रहित (निःस्नेहौ) स्नेह (निष्परिग्रहौ) परिग्रह रहित 'होवे' ४६ ॥

भावार्थ-राजा और रानी दोनों लम्बी चौड़ी सीमावाला राज्य और दुस्त्याज्य काम भोगों को छोड़कर विषयवासना, धन धान्य रूप आमिष, स्नेह रूप प्रतिबन्ध आरम्भ परिग्रह आदि से रहित हुए ॥ ४६ ॥

मूल—सम्म धम्म वियाणित्ता,
चेचा कामगुणे वरे।
तव पगिज्झहक्खाय,
घोर घोरपरक्कमा ॥ ५० ॥

छाया—सम्यक् धर्म्मं विज्ञाय, त्यक्त्वा कामगुणान् वरान्।
तपः प्रगृह्य यथाख्यातं घोरं घोरपराक्रमौ ॥ ५० ॥

अन्वयार्थ—(सम्यक्) शुद्ध (धर्म्मम्) धर्म्म को (विज्ञाय) जान कर (वरान्) प्रधान (कामगुणान्) काम भोगों का (त्यक्त्वा) छोड़कर (यथाख्यातम्) जिस प्रकार का प्ररूपित (घोरम्) दुष्कर (तपः) तप को (प्रगृह्य) अङ्गीकार कर (घोरपराक्रमौ) 'कर्मों का नाश करने में' अत्यन्त पराक्रम करें ॥ ५० ॥

भावार्थ-मिथ्यात्व, अविरति, कषाय तीनों दोषों कर के रहित शुद्ध धर्म को राजा और रानी दोनों ने पहिचान कर हस्तगत प्रधान काम भोगों का परित्याग कर दिया। और अर्हत् भगवन्तोंने जिस प्रकार प्रतिपादन किया है उसी प्रकार दुष्कर तप मन का अङ्गीकार कर रौद्र कर्मोंका नाश करने में अत्यन्त पराक्रम करने को प्रवृत्त हुए ॥ ५० ॥

मूल—एव ते कमसो बुद्धा, सव्वे धम्मपरायणा।
जम्ममच्चुभउव्विग्गा, दुक्खस्संतगवेसिणो ५१

छाया—एवं ते क्रमशः बुद्धाः, सर्वे धर्म्मपरायणाः।
जन्ममृत्युभयोद्विग्नाः, दुःखस्यान्तगवेषिणः ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थ—(एवम्) इस प्रकार (ते) वे (सव्वे) सब छओं (जन्ममृत्युभयोद्विग्नाः) जन्ममृत्यु के भय से उद्वेग पाते हुए (क्रमशः) अनुक्रम से (बुद्धाः) तत्त्वज्ञ हुए



वैराग्य पाकर भृगु पुरोहित और उनकी स्त्री एवम् दोनों एडक करोड़ों की सम्पत्ति को ज्यों की त्यों छोड़ कर मुनि वृत्ति ग्रहण करने के लिये जा रहे हैं। और आई हुई धन की गाड़ियोंको देखकर रानी अपने राजा को कह रही है कि धन सम्पत्ति नश्वर है।

(धर्म्मपरायणाः) धर्म करने में तत्पर हुए 'और' (दुःखस्यान्तगवेषिणः) दुःखों का अन्त करने में प्रयत्नशील हुए ॥ ५१ ॥

भावार्थ—इस प्रकार पुरोहित के दोनों पुत्र और पुरोहित, पुरोहित की स्त्री, राजा और रानी ये छः ओं जने अनुक्रम से जन्म मृत्यु के भय से भयभीत होते हुवे तत्पश्च होकर धर्म्म करने में तत्पर हुए। और संसार के सभी दुःखों का अन्त करने में प्रयत्न शील हुए ॥ ५१ ॥

मूल—सासणे विगयमोहाण, पुव्विं भावेणभाविया।
अचिरेणेव कालेण, दुक्खस्सतमुवागया ॥ ५२ ॥
राया सह देवीए, माहणो य पुरोहिओ।
माहणी दारगा चेव,सव्वे ते परिनिव्वुडि५३ त्तिबेमि

छाया—शासने विगतमोहाना, पूर्वं भावितभावनानि।
अचिरेणैव कालेन, दुःखस्यान्तमुपागताः ॥ ५२ ॥
राजा सह देव्या, ब्राह्मणश्च पुरोहितः।
ब्राह्मणी दारकौ चैव, सर्वे ते परिनिर्वृता: ।५३। इति ब्रवीमि

अन्वयार्थ—(पूर्वम्) पहिले (भावितभावनानि) शुद्ध भावना भाने वाले 'वे छः ओं जने' (विगतमोहानाम्) निर्मोह जनों के (शासने) मण्डल में (अचिरेणैव) थोड़े ही (कालेन) समय करके (दुःखस्य) दुःख के (अन्तम्) अन्तको (उपागताः) प्राप्त हुए

(धर्म्मपरायणाः) धर्म करने में तत्पर हुए 'और' (दुःखस्यान्तगवेषिणः) दु:खों का अन्त करने में प्रयत्नशील हुए ॥ ५१ ॥

भावार्थ—इस प्रकार पुरोहित के दोनों पुत्र और पुरोहित, पुरोहित की स्त्री, राजा और रानी ये छओं जने अनुक्रम से जन्म मृत्यु के भय से भयभीत होते हुए तत्पर होकर धर्म करने में तत्पर हुए। और संसार के सभी दुःखों का अन्त करने में प्रयत्नशील हुए ॥ ५१ ॥

मूल—सासणे विगयमोहाणं, पुव्विं भावणभाविया।
अचिरेणेव कालेण, दुक्खस्सन्तमुवागया ॥ ५२ ॥
राया सह देवीए, माहणो य पुरोहिओ।
माहणी दारगा चेव, सव्वे ते परिनिव्वुडि ॥ ५३ ॥ त्तिबेमि

छाया—शासने विगतमोहानां, पूर्वं भावितभावनानि।
अचिरेणैव कालेन, दुःखस्यान्तमुपागताः ॥ ५२ ॥
राजा सह देव्या, ब्राह्मणश्च पुरोहितः।
ब्राह्मणी दारकौ चैव, सर्वे ते परिनिर्वृताः ॥ ५३ ॥ इति ब्रवीमि

अन्वयार्थ—(पूर्वम्) पहिले (भावितभावनानि) शुद्ध भावना भाने वाले 'ये छःओं जने' (विगतमोहानाम्) निर्मोह जनों के (शासने) मण्डल में (अचिरेणैव) थोड़े ही (कालेन) समय करके (दुःखस्य) दुःख के (अन्तम्) अन्तको (उपागताः) प्राप्त हुए

॥ ५२ ॥ (देव्या) राणी (सह) सहित (राजा नरेश (च) और (ब्राह्मण) ब्राह्मण, (पुरोहितः पुरोहित (ब्राह्मणी) पुरोहितानि (च) और (दारको दोनों पुत्र (ते) व (सव) सब (परिनिर्वृताः) सम्प दुःखों से निवृत्त हुए ॥ ५३ ॥

भावार्थ—ये छ औं व्यक्ति पव जन्म में जो शुद्ध भावनाओं आत्मा को पवित्र की थी उसी से ये पुनरपि वीतराग भग के जिन शासन में दीक्षा अर्थात् सपूर्ण गृहस्थाश्रम को त्या हुए मुखपर मुहपत्ति बाध कर रजोहरणादि धारण कर वृत्ति ग्रहण की। बाद अन्यत्न ही समय में ससार के दुःखों सीमा को पार कर गये ॥ ५२ ॥ कमलावती राणी इक्षुकार र पुरोहित, पुरोहित की स्त्री और दोनों पुत्र ये छ ओं ज जन्म जन्मान्तर के किये हुये कर्मों का बधन तोड कर स दुखों से निवृत्त हुए । मोक्ष धाम में जा विराजे यहा अखण्ड अपूर्व सुखोंका अनुभव कर रहे हैं ॥ ५३ ॥

समाप्तोऽयमध्ययनम्

ओम् शान्ति शान्ति शान्ति



* गुरुप्रशस्ति *

शुभे वर्षे ख-धु-त्रि-निधि-कु-मिते विक्रमरवे त्रयोदश्यामू
त सितदले जन्म किल य ॥ चतुर्थाभिख्योऽय मुनिरिह चतुर्थे
युगे; चतुर्थस्य द्वारं विघटयतु वर्गस्य भविनाम् ॥ १ ॥ गिर
बाल्ये वयसि यवनानीमपि लिपिं, पठित्वेंग्लिश सुष्ठु सम
च पारस्यक चण ॥ अनेकाभिभाषाभिरिति हि तदा य
चेतोऽप्याराजीदेकोक्ति प्रथमत चतुर्थं मुनिममुम् ॥ २ ॥ कृतो
वर्षे निज-जननत षोडश इतेऽरहद्धन्या कन्या सलिलनि
स्यामिव पराम् । उपेतायामष्टादशशरदि तुर्ये युग इह, जय
मन्न स्मरमपि यथार्थास्यमकरोत् ॥ ३ ॥ यथा मेनाधन्या
नियमवशाऽधिगमिनो, मति गोपीचन्द्रो मृदुवयसि चन्द्रोप
॥ तथा बोध मात्राऽध्यगमि पलमात्राद् रहसि य श्चतुर्थोऽय
जयति मुनिमल्लोऽत्र भुवन ॥ ४ ॥ अथाब्दे दृग्-बाण-ग्रह-कु-
त विक्रमरवे, रय रविदृग्-बाण-ग्रह-कुघटित स्तुर्यमुनिराट् ।
य सद्वदे सुविशद-तपस्या मुखमति स्तृतीयाया दीक्षा मध
वृतीयाधर्मिकवत् ॥ ५ ॥ गुरुहीरालालान् यम-नियमपालान्
वर श्चरन्ध्यान ज्ञान समलभत मान च मुनिषु । यथा मेघो
स्थलमुपति नीर च सदृश, तथाऽसोव्याख्यान घटयति
न सखि जडे ॥ ६ ॥ यदास्याब्ज-स्यन्द मधुरिम-प्रपन्न प्रक
प्रभाय व्याख्यान सुम-रस-समान रसयितुम् । समुद्भूता
नर-नृपति-भृङ्गा अभिमतान् । सुरान् सयाचन्ते प्रथमनर-
च स्थापिता ॥ ७ ॥ प्रभावि व्याख्यानामृतरसनिधानय दृशन
ज्योत्स्नामाजे विबुध-भ-समाजिद्धरुचये । यदास्वैषाक्कान्ता
सुख-निकायाय नितप, सभाचक्षुश्चोर क्षितिपति-चकार
यति ॥ ८ ॥ गतामर्षो मर्षेण च जनितहर्षेण सहित ; समा यो
यो विद्वद्सभा योगरचना स्वमुक्त्यै यस्तृष्णा दधदपि च
परिजह चतुर्थे सन्मानो मुमिरुपममानो विजयते ॥ ९ ॥

शीघ्रता कीजिये, शीघ्रता कीजिये, स्टाक में कम पुस्तकें हैं।

हिंदी साहित्य का अपूर्व ग्रंथ

आदर्शमुनि (सचित्र)

इस ग्रंथ के अन्दर प्रसिद्ध वक्ता पंडित मुनि श्री १००८ श्रीचौथमलजी महाराज के किये हुवे, सामाजिक, धार्मिक, सदाचार दयामयी आदि कई महत्त्व पूर्ण कार्यों का दिग्दर्शन कराया गया है साथही में जैन धर्म की प्राचीनता के विषय में अनेक विदेशी विद्वानों की सम्मतियों सहित व अन्य मत के ग्रंथोंके प्रमाणों से तुलना करते हुवे अच्छा प्रकाश डाला गया है पुस्तक अति उत्तम, उपयोगी एवं हरएक के पढने योग्य है राजा महाराजाओं व व सेठ साहुकारों के २० उम्दा आर्ट पेपर पर चित्र हैं पृष्ठ सख्या ४४० रेशमी जील्द होते हुवे भी मूल्य लागत मात्र से कम रू० १।) सवा रुपया. राजसंस्करण मूल्य रु० २) डाक खर्च अलग

पत्ता—श्रीजैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति,
रतलाम (मालवा)